ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

ओ३म् भूः भुर्वः स्वः । तत्सवितुर्बरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात ।।

"ब्रह्म ज्योति प्रसाद"

प्रस्तुत पुस्तक "ब्रह्म ज्योति प्रसाद" श्री ला० किदार नाथ मलहोत्रा जवाहर नगर, श्रीनगर (कश्मीर) में ८ ज्येष्ठ कृष्णा गुरुवार सम्वत् २०२० तदनुसार १६ मई सन् १९६३ प्रातः समय प्रभु प्रेरणा से लिखनी आरम्भ की।

लेखक :

संग्रहक

श्री पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

प्रकाशक :

श्री ला० राजा राम जी कपूर

३६-ए वजीर बाग, श्रीनगर (कश्मीर)

सामवेद पहली बार १००० अथर्ववेद

विषय सूची

❊ भक्त को प्रभु से पुकार ❊

तेरे द्वारे ते आ गया, रखन वाला तू ही तू ।
सारे ही जग नू वेख्या, लगदा ए प्यारा तू ही तू ।।
पापां दे घुम्मर घेर विच, वदियां दे काले अन्हेर विच ।
बेड़ी है उगमग डोल दी, आस किनारा तू ही तू ।।तेरे०।।
खालो द्वारे तों मोड़ना, तेरे बिना कोई होर ना ।
मैंनु है तेरा आसरा, मेरा सहारा तू हो तू ।।तेरे०।।
मैं निमाणी दा मान तू, अपना विरद परद पछान तू ।
चरणां दो प्रोती दा दान दे, दाता दुलारा तू हो तू ।।तेरे०।।
अमलां दे लेखे न फोलणे, एब न कन्डे तोलने ।
भुलण हारा जहान हैं, वख्शण हारा तू ही तू ।।तेरे०।।

❀ आवश्यक सूचना ❀

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्म दानं विशिष्यते

अर्थात—सबसे उत्तम दान ब्रह्म ज्ञान ही है। ज्ञान का स्वरूप यदि भाव रूप में देखा जावे, तो उसका नाम प्रेम है। (क्योंकि बिना ज्ञान के प्रेम नहीं होता) ज्ञान का स्वरूप यदि क्रिया रूप में देखा जावे तो उसका नाम त्याग है, क्योंकि ज्ञान के लिए त्याग करना होता है, त्याग से आत्मिक उन्नति होती है।

वेदों को पढ़ते रहो, जासे उपजे ज्ञान,
सदा वेद के धर्म हित, करो नित्य बलिदान।
सब दानों से है बड़ा, ज्ञान ही का दान,
जिस प्रताप से मिलत है, मानुष्य देह महान ॥

तरोवर फल नहीं खावत हैं, सरोवर पिये न पान।
कहे रहीम पर काज हित, सम्पत्ति जचे सो जान ॥

प्यारे—यदि इस समय तेरे शुभ कर्मों के भोग से तेरे पास धन सम्पत्ति है, तो तू इसे यथोचित दान देने में संकोच मत कर—सत्य ज्ञान में देने में अपना कल्याण समझ, श्रद्धा-युक्त ज्ञान दान देना सचमुच भगवान को उधार देना है, जो कि बड़े भारी सूद के साथ फिर वापस मिलता है, जो जितना त्याग करता है, वह उससे न जाने कितने गुणा अधिक प्रति-फल पाता है, यह ईश्वरीय नियम है।

ओ३म् आ त्वा विशंत्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणाः
शं ते सन्तु प्रचेतसे। ऋ० १-५-७

भावार्थ--ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीर्वाद देता है, कि जो मनुष्य विद्वान परोपकारो होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके इन सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है वही सदा सुख को प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं !

पाठकगण--इस वर्ष प्रभु की कृपा से श्री लाला किदार नाथ जो मलहोत्रा जो ऋषि भक्त हैं के स्थान पर मौन व्रत आरम्भ किया हुआ था, एक दिन इनके सुपुत्र लाला सतीश चन्द्र जी मेरे पास आये—मुझसे कहा कि आज हमारे एक प्रेमी के मकान का प्रवेश संस्कार है मुझे मकान के प्रेमी ने आपको अपने साथ लिवाने को कहा था--सो आप चलें-- मैंने कहा प्यारे ! मैं तो मौन में हूँ वहाँ चल कर क्या करूँगा—तो मुझसे कहा कि प्रेमी ने मुझसे कहा था कि आप स्वामी जी को जरूर साथ लावें, तो मैं उनके साथ चला गया संस्कार कार्य पूर्ण होने पर मुझे श्रद्धा भावना से अपनी कार पर बिठाकर पहुँचाया--एक दिन अकस्मात् वह पत्नी सहित मेरे यहाँ आए--बड़ी श्रद्धा-प्रेम-नम्र स्वभाव से बातें करते रहे। मुझे नई पुस्तक लिखते देखकर बड़ी श्रद्धा भावना से मुझसे कहा कि स्वामी जी ! यह पुस्तक लिखो हुई मुझे दे दें, मैं ही छाप कर दूँगा--मेरा अपना प्रेस है कागज इत्यादि सब भगवान का दिया हुआ मेरे पास है (उनका शुभ नाम श्री राजाराम जी कपूर है) मैं उनकी इस कदर उदारता;

श्रद्धा-त्याग-निष्काम भावना को देखकर चकित-सा होगया—सचमुच सन्तों का कथन है कि—

जे तू उसदा हो रहे, सब जग तेरा हो।

यथार्थ है। वेद भगवान भी कहता है—

ओ३म् स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनाः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दवि वसंग ।।
अ० २०।५२।२

भावार्थ—जब मनुष्य सार पदार्थ पाने के लिये परमात्मा की भक्ति निर्भय होकर करता है। परमात्मा उसको इस प्रकार चाहता है जैसे प्यासा जल को, और जगदीश्वर उसको इस प्रकार उपकार करता है जैसे सूखा के पीछे मेंह, आनन्द देता है।

मैंने लाला राजाराम तथा उनकी धर्मपत्नी के मुख की ओर देखा—कि वह किस भावना से कह रहे हैं तो देखते ही तत्काल मैंने लिखकर दिया, प्यारे! आप दोनों भाग्यशाली हो। उन्होंने मेरे शब्द को सुनकर सर नीचा कर लिया—प्यारे! ज्ञान भगवान की निजी पूँजी है यह धन से नहीं मिलती, इसी ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य भगवान को साक्षात कर सकता है और जीवन मुक्त हो सकता है। भगवान जिसकी कमाई को स्वीकार करना चाहता है स्वयं गुप्त प्रेरणा से ऐसे ही स्वीकार करता है। भगवान लेता नहीं—वह तो परिपूर्ण है परन्तु वह अपने प्यारे पुत्रों को देना सिखला कर देवता बनाना चाहता है। वह परमात्मा शुद्ध-निर्मल-पवित्र है। वह पवित्र कमाई स्वीकार करता है। यह है श्रद्धायुक्त

निष्काम भावना !

पाठकगण ! ऐसे शुभ कर्म धन के धनी नहीं किया करते, किन्तु हृदय के धनी ही किया करते हैं। हृदय के धनी वही होते हैं जो उसे अपने हृदय में देखते हैं वह साहूकार की पूँजी साहूकार को भेंट करने में अपना कर्त्तव्य-धर्म समझते हैं और वह सदा सुखी तथा आनन्दित रहते हैं। प्यारे ! इस पुस्तक के छपवाने का सारा भार श्री ला० राजाराम जी ने उठाया है। मेरी प्रभु देव से प्रार्थना है कि वह उन्हें धन-धान्य से पूर्ण, परिवार सहित प्रफुल्लित तथा सुखी आनन्दित रखें और धर्म कार्यों में प्रवृति बनाये रखें। कवि लिखता है---

—:※ महा पुरुष ※:—

दूसरों के लिये हैं, वह कष्ट जीवन में उठाते,
जगत के कल्याण के हैं, कार्य करके दिन बिताते,
सत्य का पथ पकड़कर, वे अडिग रह कर हैं दिखाते,
सत्य पर सिद्धान्त पर, वे प्राण भी हँसकर गँवाते,
महापुरुषों के चरित से प्राप्त यह शिक्षा करें हम।
महापुरुषों के दिखाये, पथ पर ही पग धरें हम॥
दूसरों के लिये ही सोचें-विचारें सदा हम सब।
दूसरों के लिये ही यह जन्म धारें सदा हम सब॥
मनुजता की बोली को जल दें, संवारें सदा हम सब।
महा पुरुषों का चढ़ा ऋण है उतारें सदा हम सब॥

भूमिका

वर्तमान काल में जहाँ विज्ञान (साइंस) की उन्नति ने हमारे जीवन के लिये प्राकृत उन्नति की है। वहाँ अध्यात्मिक उन्नति (सदाचार) को हानि पहुँचाने में कोई भी कमी नहीं की, इसका कारण क्या है ? कि हमने बुद्धि (दिमाग़) से काम लिया है, हृदय से नहीं। बुद्धि अच्छी न हो तो मनुष्य को इतनी हानि नहीं पहुँचती जितना हृदय का अच्छा न होने से हानि पहुँचती है। किसी बुद्धिमान ने ठीक कहा है, कि दिन बुरे हों तो कोई बात नहीं परन्तु दिल बुरा न हो, बुद्धि ठीक न होने से मनुष्य जीवित रह सकता है परन्तु दिल के फल होने पर मृत्यु हो है।

बुद्धि और हृदय (दिल और दिमाग़) के यकसू (एक समान) होने पर प्रकाश होता है, हमने इनके अन्दर प्रकाश करने वाली आध्यात्मिक-धार्मिक विद्या की तरफ ध्यान देना छोड़ दिया है, केवल ऐश्वर्य-भोग (धन कमाने) प्राप्ति की शिक्षा पर जोर दिया है। इसलिये अब लोगों का स्नेह रुपयों पैसों से ही हो गया है। यह धन प्राप्ति का स्नेह इस कदर बढ़ा है कि इसने सब रिश्ते नाते सम्बन्धी झूठे कर दिखाये हैं, पुत्र-पिता में प्यार नहीं, माँ-बेटी में द्वेष है, भाई भाई का शत्रु है, सच्चे मित्र मिलते नहीं और पति-पत्नी भी आपा-धापी के कीचड़ में फँस गये हैं। वर्तमान शिक्षा बजाए प्रेम और मिलाप पैदा करने के ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि प्रचण्ड कर रही है।

हिंसा का राज्य है। मांस, अण्डा, मछली शराब का दौर दौरा है। सदाचार व चरित्र का दिवाला है धर्म-वेद विद्या का निरादर किया जा रहा है। स्वराज प्राप्ति से पूर्व ऐसी दुर्दशा भारत की न थी। अनेकों पार्टियाँ खड़ी हो गई हैं। हर एक अपनी २ ढफली बजाकर जनता को धर्म-कर्म तथा संगतिकरण के बजाए फूट डलवाकर अपना मान सम्मान प्राप्त करना चाहता है। आहार अशुद्ध, विचार अशुद्ध, व्यवहार अशुद्ध, आचार भृष्ट हो रहा है, भोगी सदा लड़ा करते हैं। वेद भगवान अपनी अमृत वाणी द्वारा हमारी ऐसी हीनावस्था के कर्मों का फल बतलाते हैं।

ओ३म् देवा वा एतस्या मवदन्त पूर्वे सप्त ऋष-यस्तपसा ये निषेदुः। भीमा जाया ब्रह्मणस्योपनीता दुर्धां दधोत्ति परमेष्वयोमन ।।अ० ५-१७-६

भावार्थ—महात्माओं ने पूर्ण शक्ति से परीक्षा करके साक्षात् किया है कि जहाँ पर वेद विद्या का निरादर और कुव्यवहार का आदर होता है वहाँ अवश्य ही विपत्ति पड़ती है।

महर्षि स्वामी दयानन्द महाराज ने आर्य समाज के नियम बनाते हुए लिखा है कि वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है, आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी, उसको टूटे हुए पाँच सहस्त्र वर्ष हो गये हैं। ऐसे अँधेरे के समय में श्री स्वामी जी महाराज ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया है, परन्तु हमें शोक है कि वेद के पढ़ने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वह

प्रबन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। काश ! आर्य जाति ऋषि के नियमों पर अटल विश्वास रखती और आचरण करती तो आज सारा भारतवर्ष नहीं-नहीं सारा संसार आर्य-वर्त देश जैसा कि पहले कहलाता था बन जाता और घर घर में सुख शान्ति का धाम बन जाता।

पाठकगण ! आपको मालूम ही है कि मैं वर्ष के वर्ष चौमासा के दिनों में मौन व्रत एकान्तवास किया करता हूँ, व्रत के दिनों में प्रायः मैं वेद का स्वाध्याय करता हूँ। स्वाध्याय करते समय जिन जिन मन्त्रों के प्रति भगवत प्रेरणा होती है उन मन्त्रों के आधार पर नई पुस्तक भगवत प्रेरणा से लिखता हूँ मेरा वेद पर अटल विश्वास है और पुस्तक में जो भी उपदेश होते हैं वह यथार्थ रोचक, भयानक प्रायः रोचक होते हैं। जिनको साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य भी आसानी से पढ़ तथा समझ सकता है। इस समय तक १९ पुस्तकें छप कर भगवत प्रसाद रूप में दी जा चुकी हैं, और एक एक पुस्तक के कई कई संस्करण छप चुके हैं। इस वर्ष प्रभु प्रेरणा से नई पुस्तक जिसका नाम 'ब्रह्म ज्योति प्रसाद' रखा गया है लिखी गई है।

पाठकगण ! पुस्तक के छपवानार्थ किसी से अपील या माँग नहीं की जाती, किन्तु जिन भगवत प्यारों के पास भगवत पूँजी होती है वह स्वयं प्रभु प्रेरणा से गुप्त रूप देते और भेज देते हैं। पुस्तक छप जाने पर प्रेमियों को भगवत प्रसाद रूप में दी जाती है बेची नहीं जाती।

प्रायः पुस्तक लेते समय प्रेमी, पुस्तक पर पुस्तक का मूल्य अंकित न देखकर प्रश्न किया करते हैं। ऐसे प्रेमी सज्जनों की

सेवा में निवेदन है कि अग्नि में जो (हवी) वस्तु डाली जाती है, वह विश्व में प्रसारित हो जाती है, संन्यासी भी अग्नि रूप होता है ज्ञान तो प्रभु की निजी पूँजी है यह धन द्वारा प्राप्त नहीं होती, ज्ञान अमूल्य वस्तु है संन्यास लेकर पुस्तकें बेचना बनियापन है। ऐसा करना अनुचित है प्राय: व्रत के आरम्भ करने से पूर्व ही वह प्रमी जिनके पास भगवत पूँजी होती है नई पुस्तक छपवानार्थ अपनी पवित्र कमाई का भाग भजना आरम्भ कर देते हैं अत: जो प्रेमी इस निष्काम ज्ञान यज्ञ में अपनी पवित्र कमाई का भाग भेजना चाहें वह निम्न पते पर भेजकर प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करें।

"समर्पण"

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्प्यते

परम पिता परमात्मा की कृपा तथा अनुकम्पा से यह पुस्तक "ब्रह्म-ज्योति प्रसाद" जवाहर नगर श्रीनगर (कशमीर) श्री ला० केदारनाथ जी की कोठी में लिखी गई उस पारब्रह्म परमात्मा की प्रेरणामयी रचना भी उस ब्रह्मस्वरुप परमात्मा के चरणों में समर्पित है।

"धन्यवाद"

मैं उन महानुभावों का धन्यवाद करता हूँ कि जिनकी पुस्तकों के स्वाध्याय करने से इस पुस्तक के लिखने में कुछ सामग्री की सहायता प्राप्त की, मेरे इस व्रत में श्रद्धा प्रेम सात्विक भावना से श्री ला० रामलाल जी इंजीनियर सम्भोली श्री डा० दीनानाथ जी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती हंसरानी, श्री रामकुमार तथा उनकी धर्म पत्नी श्रीमती जनकदुलारी,

श्री परमेश्वरी दास जी, श्री विश्वम्बर दयाल जी, श्री ला० सेवकराम ओमप्रकाश जी, श्री रामरक्षपाल जी सर्राफ चन्दौसी श्री डा० महानन्द जी बहजोई श्री ला० किशोरीलाल जी भण्डारी भौरा कौलड़ी धनबाद (बिहार) श्री ला० फिरायालाल तथा उनके सुपुत्र ला० तिलकराज तथा उनकी धर्म पत्नी श्रीमती कमलेश रानी जिन्होंने बड़ी श्रद्धा भावना से मुझे श्रीनगर में व्रत करने को प्रेरित किया और श्री ला० किदारनाथ जी मलहोत्रा ने बड़ी श्रद्धा भावना से अपने स्थान जवाहर नगर श्रीनगर (कशमीर) में मुझे व्रतार्थ दो खुले कमरे भोजनाशाला स्नानास्थान इत्यादि जुदा २ दिये और जो मेरी सेवा इनके प्यारे सुपुत्र श्री सतीशचन्द्र और पुत्र वधू ने तथा ला० तिलकराज तथा इनकी धर्म पत्नी श्रीमती कमलेश जी तथा श्री ला० धर्मवीर जी बत्रा ने की। मैं इनका बहुत आभारी हूँ साथ ही श्रीमती सावित्री देवी जी धर्म पत्नी श्री रा० सा० सन्तराम जी वर्मा 4-C सैक्टर 5 श्री जवाहर लाल जी खोसला 105 सैक्टर 21-A ला० विद्यारत्न जी भारत स्टोर ला० गुरबखश रायजी भल्ला सैक्टर २२·D चंडीगढ़ और ला० देवराज खुलड़ तथा श्रीमती पूर्ण देवी जी लुधियाना ने जो मेरी आवश्यकताओं को मालूम कर पूर्ण करने में सहायक रहे मैं इन सबका धन्यवादी हूँ प्रभु देव से प्रार्थना करता हूँ कि वह इन सबों की परिवार सहित धर्म कार्य में प्रवृति बनाये रखें और अपने नाम रूपी धन से मालामाल करें।

प्रार्थना

ओ३म् हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।। ओ३म् खम् ब्रह्म
।। यजु० ४०।१७

भावार्थ---सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यों ! जो मैं यहाँ हूँ वही अन्यत्र सूर्यादिलोक में, जो अन्यस्थान सूर्यादि लोक में हूँ वही यहाँ हूँ सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझसे भिन्न कोई बड़ा नहीं मैं ही सबसे बड़ा हूँ। मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज का नाम "ओ३म्" यह है जो मेरा प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेता है, उसकी अन्तर्यामी रूप से मैं अविद्या का नाश कर, उसके आत्मा का प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्य स्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग कर मोक्ष सुख को प्राप्त कराता हूँ ।। १७ ।।

सूर्य चमकता है। ज्योति का पुंज है। परन्तु इसकी यह ज्योति एक आवरण सा है जो इसके पीछ के। इसके भीतर के सच्चे सूर्य को, इसके प्रेरक केन्द्र को छिपा रहा है, मुझे तो आदित्य के अन्दर के उस प्रेरक केन्द्र को देखना है, उसे पाना है वही हो जाना है, मुझे अन्धकार से निकल कर ज्ञानवान बनना है, परन्तु उस ज्ञान को छोड़कर उससे बड़े ज्ञान को भी

पाना है परन्तु उस शिव से बड़े शिव को भी पाना है, मुझे सुन्दर को, किन्तु उस सुन्दर से बड़े सुन्दर को भी पाना है। इस जीवन की सांकरी प्रेम-गली में अपर ज्ञान पर ज्ञान को, अपर सत्य पर सत्य का मार्ग विघातक बन रहा है, मुझे वह साधन साधना है जो अपर से पर का विवेक करा सके, शुभ से परे धकेल कर शुभतर के पास पहुँचा सके।

नाथ ! मेरे दुर्गण मुझे जान पड़ते हैं, पर क्या करूँ, मन पर बस नहीं चलता अब आप ही प्रभु ! बीच में आ जाईए और अपनी दया सिन्धु होने की प्रसिद्धि को सत्य कर दिखाईए, क्या करूँ। इस मन को यह विषय वासना तो नहीं छोड़ती, मानने से भी नहीं मानती, ठीक पतन की ओर लिये जा रही हैं, प्रभु ! दौड़ो–दौड़ो ! नहीं तो मैं अब डूबा—सिवाए आपके और कोई दिखाई नहीं देता, जो इस बेगवान मन को रोक सके, यह एक घड़ी भी एक स्थान पर नहीं ठहरता, बन्धन तोड़-ताड़ कर भागता है, विषयों के मारे भवसागर में कूदा जाता है, विषय वासनाएें पापिनी मेरा नाश करने पर तुली हुई हैं--नाथ ! तुम सभी देख ही रहे हो—कृपा करो, मुझे इस मृगजाल से बचाओ, हे दयालु पिता ! ऐसे मौन साधे क्यों बैठे हो, मेरी बात का जवाब दो, तेरे कृपा वचनों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, प्रेमियों के प्रियतम ! मुझसे बोलो-- शरणागत को महाराज, पीठ न दिखावो, सुना है साधु-सन्तमहात्माओं को तुम पहले मिले हो उनसे बोले हो वे भाग्यवान थे, क्या मेरा इतना भाग्य नहीं आज तक तूने किसी को निराश नहीं किया और मेरे जी की लगन तो यही है कि

तुमसे मिलूँ। इसके बिना मेरे मन को कल नहीं पड़ती, अब तुम्हारी ही शरण ली है, क्योंकि तुम्हारा कोई दास विफल मनोरथ नहीं हुआ, अकाल पीड़ित भूखों के सामने मिष्ठान्न का परोसा हुआ थाल सामने आ जाए अथवा घात में बैठी बिल्ली मक्खन का गोला देख ले, तो उसकी हालत जो होती है, हे नाथ! वैसी मेरी हालत हो रही है, तुम्हारे चरणों में मन ललचा रहा है मिलन के लिए प्राण सूख रहे हैं, तुम्हारे बिना हे प्राण-ईश्वर! मुझ पर ममत्व रखने वाला इस विश्व में और कौन है किससे मैं अपना दुःख कहूँ, कौन ही मेरी भूख प्यास बुझाएगा, मेरे ताप को हरने वाला कौन है आओ मेरी माँ! क्या देखती हो, धीरज नहीं रहा, जन्म जन्मान्तर से तेरे वियोग से व्याकुल हो रहा हूँ। सचमुच हे माँ! तुमसे ही तो मैं निकला हूँ, फिर मैं तुमसे अलग कैसे रह सकता हूँ निःसन्देह मैं दोषी हूँ अपराधा हूँ पापी हूँ, मैला कुचैला हूँ, पर माँ मुझ पर अब क्रोध मत करो, इस अन्जान बालक को न रुलाओ। मैं निर्बल हूँ बच्चे से क्या ज़ोर अजमाना है अब अपने विरद की लाज रखो, हे मेरे माता-पिता! मैंने कुसंग में पड़ कर अनेक अन्याय और अधर्म किए, मैंने अपने आपका सत्यानाश किया, मैं अपना आप ही बैरी बना, भगवन! तुम क्षमा के निधान हो, अब मुझे इस भवसागर से पार उतारियो बस नाथ मुझे अपनाओ, अपनाओ, अपनाओ यही प्रार्थना है, ओ३म् शम्।

विनीत

ब्रह्मानन्द

C/o भारत ग्लास कम्पनी

कुतुबरोड, देहली टेलीफोन २२६६८०

"साधक की प्रभु से पुकार"

प्रभु याचक तेरे दर का हूँ,
क्यों दर्श दिखाना भूल गए ।
मुद्दत से आस लगाई है,
क्यों भिखा दिलाना भूल गए ।। प्रभु ।
तेरे दर का हूँ दरवेश पिता,
हृदय में करो प्रवेश पिता ।
मन मन्दिर में आकर भगवन,
क्यों ज्योत जगाना भूल गए ।। प्रभु ।
जो तेरे दर पर आता है,
वह खाली कभी नहीं जाता है ।
इस भूले भटके बालक को,
क्यों राह दिखाना भूल गए ।। प्रभु ।
अबोध बालक जान पिता,
कीजो शीघ्र कल्याण पिता ।
मेरे अवगुण भगवन क्षमा करो,
क्यों बिगड़ी बनाना भूल गए ।। प्रभु ।
चढ़ती जाती जल धारा है,
और काफी दूर किनारा है ।
मेरी डगमग नैया डोल रहो,
क्यों पार लगाना भूल गए ।। प्रभु ।

"नमस्कार"

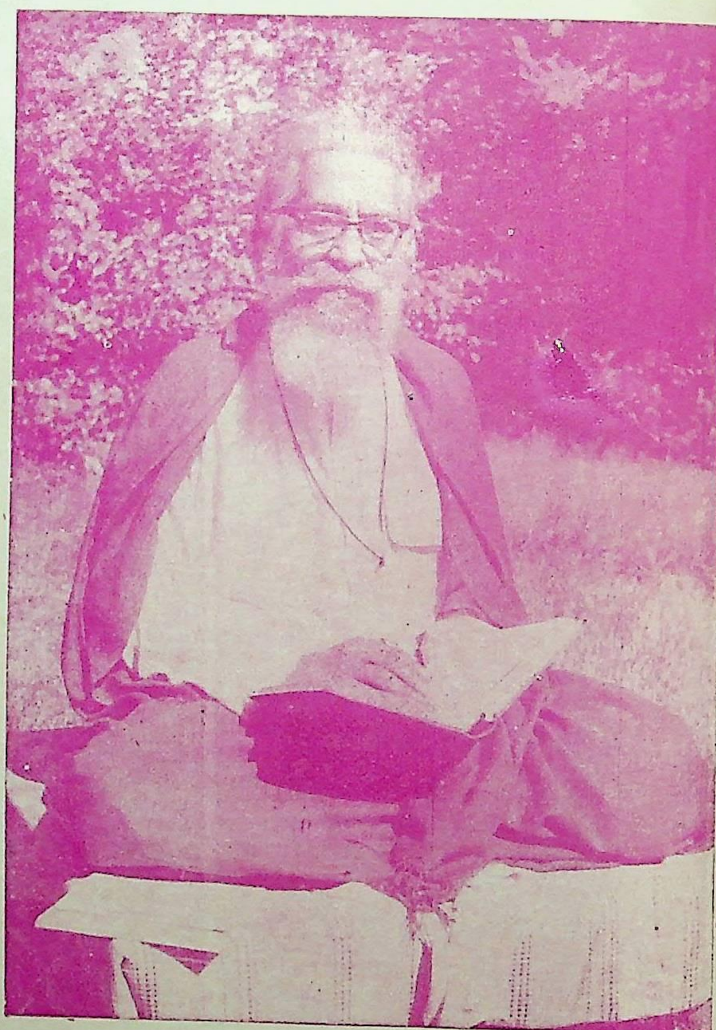
नमो श्रेष्ठि कर्त्ता नमो कष्ट हर्त्ता,
नमो विश्व भर्त्ता नमो और नमः हो ।
नमो दु:ख भंजन नमो पाप गञ्जन,
नमस्ते निरञ्जन नमो और नमः हो ।
नमो दीन बन्धु, नमो करुणा सिन्धु,
नमस्ते स्वयम्भु नमो और नमः हो ।
नमो तिमिर हन्ता, अटल और अनन्ता,
नमस्ते नियन्ता नमो और नमः हो ।
नमो पतित पावन, नमो दु:ख निवारण,
अनादि अकारण नमो और नमः हो ।
नमो ज्ञान दाता नमस्ते विधाता,
विशन है यह गाता नमो और नमः हो ।

इस पुस्तक से पूर्व रचित पुस्तकें भी स्वाध्याय शील सज्जनों को प्राप्त हो सकती हैं ।

नं० नाम पुस्तक	संख्या
१—ब्रह्म यज्ञ प्रसाद	३०००
२—देव यज्ञ प्रसाद	७०००
३—पतृ यज्ञ प्रसाद	४०००
४—अतिथि यज्ञ प्रसाद	२०००
५—नारी धर्म कर्त्तव्य प्रसाद	३०००

नं०	नाम पुस्तक	संख्या
६—	प्रेम सुमन प्रसाद	२०००
७—	ब्रह्म प्रसाद	३०००
८—	अमृत प्रसाद	२०००
९—	यज्ञ प्रसाद	४०००
१०—	मौन यज्ञ प्रसाद	३०००
११—	भगवद्र यज्ञ प्रसाद	१०००
१२—	ब्रह्म सुमन प्रसाद	१०००
१३—	ब्रह्म सोम प्रसाद	१०००
१४—	ब्रह्म प्रकाश प्रसाद	१०००
१५—	ब्रह्म सरोवर प्रसाद	१०००
१६—	ब्रह्म ज्ञान प्रसाद	१०००
१७—	ब्रह्म भक्ति प्रसाद	१०००
१८—	ब्रह्म पथ प्रसाद	१०००
१९—	ब्रह्म प्रेम प्रकाश	१०००
२०—	परिवारिक सत्संग प्रसाद	३७०००
	कुल	७९०००

ओ३म् भूः भुर्वः स्वः । तत्सवितुर्बरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात ॥



श्री पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

"ब्रह्म ज्योति प्रसाद"

"यजुर्वेद के मन्त्रों का भावार्थ सहित संग्रह"

ओ३म् अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनंदेववीतये त्वा गृह्णामी बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १-१५

भावार्थ—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञ किया और उसका फल जानकर शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं, तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उसको सब मनुष्य हविष्कृत अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करने वाला उत्तम मनुष्य है ऐसा बार बार कह कर सत्कार करें।

ओ३म् जनयत्यै त्वा सं यौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा धर्मोसि विश्वायुरुरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिँसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके । १-२२

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्व लक्ष्मी सकल आयु अन्न आदि पदार्थ रोग नाश और सब सुखों का विस्तार हो उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उसके

बिना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है।

ओ३म् मा भेर्मा सं विक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयातत्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा । १—२३

भावार्थ-ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना व चलायमान होना कभी न चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे २ कामों से घी उत्तम २ सन्तान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं।

ओ३म् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्त्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजी द्विषतो बधः ॥ १—२४

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्यों अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिसमें भौतिक अग्नि के संयोग से ऊपर को अच्छे पदार्थ छोड़े हैं वह सूर्य्य की किरणों में स्थिर होता है तथा पवन उसको धारण करता है और वह सबके उपकार के लिये हजारों सुखों को प्राप्त करके दुःखों का विनाश करने वाला होता है।

ओ३म् कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । २—१

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बना कर और पात्र आदि होम सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार

शुद्ध कर तथा अग्नि में होम करके किया हुवा यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्य का परम धर्म है।

ओ३म् अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानाम्पतये स्वाहा। २—२

भावार्थ—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यों! तुमको वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन करके सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रियायुक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूँ वैसे ही तुम लोगों को भी पक्षपात छोड़कर सब प्राणियों के पालन से सुख सम्पादन करना चाहिए।

ओ३म् अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यँ संभ्रियासमंघ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोध्वर आस्थात्।
२—८

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुत सा अन्न उत्पन्न करने वाले होते हैं उसको सिद्ध करने के लिये मनुष्यों को बहुत सी सामग्री जोड़नी चाहिये। जैसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ मेरी आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं करनी चाहिये, किन्तु जो असंख्यात सुखों का देने वाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिसको सूर्य्य अपनी किरणों से खैंच कर वायु के योग से ऊपर मेघ-

मण्डल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहां से मेघ द्वारा गिरा देता है और जिससे पृथ्वी पर बड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है।

ओ३म् वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्टयावताम्। व्यन्तु वयोक्तँ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवंगच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मेपाहि। २-१६

भावार्थ—मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमण्डल में जाकर सूर्य्य से खिचे हुए जल को शुद्ध करती है फिर वहां से वह जल पृथिवी में जाकर ओषधियों को पुष्ट करता है वह उक्त आहुति वेद मन्त्रों से ही करनी चाहिये, क्योंकि उसके फल को जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे जो यह अग्नि सूर्य्य रूप होकर सबको प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टि व्यवहार की पालना होती है ये जो वसु आदि देव कहाते हैं इनसे विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये यही सब का पूजन अर्थात् सत्कार है जो पूर्व मन्त्र में कहा था इससे विशेषता करके प्रकाश किया है।

ओ३म् संबर्हिरङ्क्ताँ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वदेवेभिरंक्तां दिव्यं नभो गच्छतु यतस्वाहा॥
२-२२

भावार्थ—जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु, जल और सूर्य्य की किरणों के साथ मिलकर इधर उधर फैल कर आकाश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता

है इससे मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम २ साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये।

ओ३म् कस्त्वाविमुञ्चति स त्व विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि।
२-२३

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सुखों से हीन होकर और दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुखी रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उसके लिये क्या होता है, वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किसलिये छोड़ देता है ? वह उत्तर देने वाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है।

ओ३म् समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ ३-१

भावार्थ—जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन अन्न जल वस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले सन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायन्त्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन, घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिए।

ओ३म् उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत। जुषस्व समिधो मम ॥ ३-४

भावार्थ:—मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों की आहुति छोड़ते हैं तब वह उनको अति सूक्ष्म करके वायु के साथ

देशान्तर को प्राप्त करके दुर्गन्धादि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को सुख देता है ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिए।

ओ३म् पूर्णादर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज ँ् शतक्रतो॥ ३-४६

भावार्थः—जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पृथ्वी को आते हैं जिससे यव आदि औषधि शुध्द होकर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं जैसे कोई वैश्य लोग रुपया आदि को दे लेकर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदते वा बेचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुध्द द्रव्यों को छोड़कर वर्षा वा अनेक सुखों को खरीदते हैं खरीद कर फिर वृष्टि और सुखों के लिए अग्नि में ध्वन करते हैं।

ओ३म् आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा। आपो देवीर्बृहतीविश्वशंभुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा॥ ४-७

भावार्थः—यज्ञ के अनुष्ठान से विना उत्साह बुध्दि सत्यवाणी धर्माचरण की रीति तप धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इनके विना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सबके लिए सब आनन्द करने चाहियें।

ओ३म् घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथा ँ् रेवति यजमाने प्रियन्धा आविश। उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना

यज समस्यतन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिन्धाः स्वाहा देवेभ्योः देवेभ्य स्वाहा ॥ ६–११

भावार्थः—यज्ञ के लिए घृत आदि अच्छे २ पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम २ यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिए ।

ओ३म् मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वादेवाव्यं यज्ञस्यायुषे ग्रह्णामीन्द्राग्निभ्यांत्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावृहस्पतिभ्यांत्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यांत्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ ७–२३

भावार्थः—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिए सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता रहे ।

ओ३म् आतिष्ठ वृत्रहत्रथं भुक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनँ सुते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडीशन एषते योनिरिन्द्राय त्वा सोडशिने ॥ ८–३३

भावार्थः—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य्य पाने के लिए गृहाश्रम ही सेवना उचित है ।

ओ३म् सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाँसि वीर्येभि-

वीरतया शविष्ठा या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ८–५९

भावार्थः–यज्ञ आदि व्यवहारों के बिना गृहस्थाश्रम में सुख नहीं होता।

ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ १८–४२

भावार्थः—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं यह जानना चाहिये।

ओ३म् यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ १८–६५

भावार्थः—जो मनुष्य वेदी आदि को बनाकर सुगन्ध और मिष्टादि से युक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते हैं वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख को उत्पन्न करते हैं।

ओ३म् अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा वृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ २२–६

भावार्थ—हे मनुष्यो जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है वह ओषधि जल सूर्य के तेज वायु और बिजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य को बढ़ाने, प्राण अपान और प्रजा की रक्षा रूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है कोई दिव्य स्वरूप से नष्ट नहीं होता, किन्तु अवरधान्तर को पाके सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है इसी से सुगन्ध मीठापन पुष्टि देने और रोगविनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़ कर ओषधि आदि पदार्थों को शुद्धि द्वारा संसार का निरोगपन सिद्ध करना चाहिये।

"ब्रह्म ज्योति प्रसाद"

ओ३म् सुपर्णोऽसि गरुत्मान पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा देवमुत्त भान तेजसा दिश
उद हँह ॥ य० १७–७२

भावार्थ—जब मनुष्य राग अर्थात् अप्रीति और द्वेष-वैर से रहित परोपकारी होकर ईश्वर के समान सब प्राणियों के साथ वर्तें, तब सब सिद्धि को प्राप्त हो ॥७२॥

❋ मानवता ❋

प्राय: हम देखते हैं कि महात्मा भी चिता में जल रहे हैं और दुरात्मा भी, इस काल की गाल के अन्दर सभी प्रविष्ट होते चले गये और चले जा रहे हैं, यहाँ कोई प्राणी तो बचता ही नहीं, मनुष्य भी तो जा रहा है, परन्तु वह एक वस्तु को छोड़कर जाता है और वह उसकी संस्कृति है, संस्कृति को छोड़कर यदि कोई जावे, तो समझो उसका आत्मा अमर हो गया है, उसने आत्मा को बचा लिया, यही इसका तात्पर्य है। यह जो पुत्र-पुत्रियां पीछे छोड़ के दे जाता है, उसके वंश का चलना यह एक प्रकार है, और दूसरा प्रकार है कि विचारों को उन संस्कारों को छोड़कर चला जाता है जिनके आधार पर मानवता और भी आगे निकल सकती है, यह है असली देन, जो अनुभवी पुरुषों ने, सच्चे विद्वानों ने संसार को देनी चाही। यह उनका कर्त्तव्य है कि मानवता का जो स्तर है वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में उत्पन्न होता चला जाए,

यह है उनका तात्पर्य कि इस प्रकार आत्मा की रक्षा की जा सकती है।

आत्मा है क्या ? वह है मानवता। मानवता असली मनुष्य का आत्मा है और उसकी रक्षा शुभ लक्षण वाले कर्म करेगा, तभी होगी। यदि उसने बहुत शास्त्र पढ़ लिये और समझा कि मेरे आत्मा की रक्षा हो गई है, तो ऐसा नहीं हो सकता। जो मृत्यु आ रही है वह तो सबको ले जायगी, उसकी पोथियों को उसके साथ ही बेशक जला दो, परन्तु जो अच्छे कहलाने वाले कल्याणकारी, मंगलमय, संसार का भला करने वाले, आत्मा का उपकार करने वाले, परस्वार्थ के कर्म हैं, वे सब करें, तो उनका आत्मा यहाँ से कहीं नहीं जाता, वह यहीं रहता है। वह आत्मा अपने कर्मों का एक प्रकार से शरीर बनाकर संसार के अन्दर व्याप्त हो जाता है, जितना वह अधिक धर्मात्मा होता है उतना ही उसका वह शरीर व्यापक रहता है। किनका आत्मा मर जाता है और कौन नर्क के अन्धेरे में डूबता है। वेद कहता है—

असर्या नाम तो लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्तियेके चातमहानो जनाः।।

यजु ४०—३

जो कर्महीन होते हैं कर्तव्य परायण नहीं होते, वे अपने कर्तव्य को त्याग कर इधर उधर भागते हैं।

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नर।
धर्मावमन्ता कामात्मा भवत् स खलु पञ्चयते।।

म० भा० शां० प० ३०३—३४

मनुष्य जीवन दुर्लभ है, इसको प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई है, केवल माता के गर्भ से बाहर आ जाने से बच्चा मनुष्य थोड़े ही होता है, जैसे साधारण प्राणी जन्म लेते हैं। वैसे हम भी आ जाते हैं, हमारा नाम मनुष्य कब पड़ता है, जब किसी गुरु के चरणों में लगने का अवसर मिलता है, जब किसी संस्कारवान् आत्मा के संरक्षण में हम भी संस्कारवान् होते हैं, यह दूसरा जन्म है इसी का नाम मनुष्य पड़ता है, यह है मनुष्य जीवन—इसको प्राप्त करके फिर मनुष्य उस अवस्था में पहुँचेगा, 'न द्विषते' अर्थात द्वेषभाव नहीं करता, पहले पहल तो द्वेष करता था, द्वेष किससे होता है मैं इन्हें नहीं चाहता, मुझे यह पसन्द नहीं है, इसे मार दो, बस इसका नाम द्वेष है। किसी की हानि में प्रसन्नता होती है, हर समय दूसरे की निन्दा में लगे रहना, साधारण द्वेष की भावना इसी से शुरू होती है—डरो भाई! इस द्वेष से, यह सांप है सांप! यह जो वेग हैं यह अन्तरात्मा के सर्प हैं, जो अन्दर बैठे फुंकारें मार रहे हैं जब यह बेकाबू हो जायें तो फणदार हैं, खड़े हो जाते हैं, इसलिए हमारे वासनाओं के रूप में साँप-बिच्छू भरे पड़े हैं, वासनायें डसती हैं, अन्दर से काटती हैं, जब तक मनुष्य के अन्दर द्वेष की भावना मौजूद है समझो कि अभी कुछ नहीं बना, अभी उसमें मनुष्यता नहीं आई, इस वास्ते किसी मनुष्य के प्रति ऐसी भावना नहीं रखनी चाहिए. कि मैं इसको पसन्द नहीं करता, यह बड़ा बुरा आदमी है इत्यादि। भाई! इसका क्या पता, कि शायद तू उससे भी बुरा हो, अरे तू अपने अन्दर अपनी शक्ल को तो देख, शीशा सदा अपने सामने रखकर,

फिर धीरे-धीरे द्वेष का भाव उठेगा। हम सन्ध्या प्रातः और सायंकाल दोनों समय छः बार भगवान से बार-बार प्रार्थना करते हैं।

योऽस्मानद्विष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भमे दध्मः

अर्थात—जो अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं उसे आपके न्यायरूपी सामर्थ्य पर छोड़ देते हैं।

प्यारे ! यह द्वेष बड़ा भारी शत्रु है, कुछ पता नहीं है मेरा, मैं कल कितना गिर जाऊँगा—सावधान रहो। दूसरी कमी मानवता में यह होती है। इस जीवन में मनुष्य बजाए इसके कि सच्चा मनुष्य बने, वह धर्म का अपमान करता है, संयम-पूर्वक कर्त्तव्य पालन को धर्म कहते हैं जो इसमें न लगकर इधर-उधर की बातों में लगा रहता है और 'कामात्मा' जो इच्छाएँ, अन्दर से बार बार होती हैं, उनके ऊपर कोई लगाम नहीं है, हाँ मुझे चाहिये-मुझे चाहिये हर एक चीज अपने लिये लेना चाहता है इत्यादि।

जो स्वयं सब प्रकार के विषय विकार-कामनाओं से शान्त रहते हैं जो अपनी इच्छाएँ होती हैं उन्हें सूक्ष्म रूप से अपने ही अन्दर एक ही क्षण में सोच लेते हैं कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना। उसके अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन कर देते हैं फिर जो हो सो हो। सफलता हो तो भी ठीक, न हो तो भी ठीक, यह उनकी वृत्ति हो जाती है। वह सब प्राणी का कल्याण और सुख सदा चाहते हैं, किसी का बुरा चिन्तन नहीं करते, पंजाबी का बड़ा महामन्त्र है।

'सरवत दा भलां' 'न क्रोधयन्ति'

किसी पर क्रोध नहीं करता, उनका पारा कभी ऊपर नहीं उठता, उठे क्यों ? जितना पारा ऊपर उठेगा, शक्तियों का ह्रास होगा सदा ऐसी शक्तियों को शुभ कामों में लगाना चाहिये, जितना हम क्रोध करते हैं उतना हम अपने आपको खाते हैं।

श्री स्वामी सालगराम जी एक अच्छे सन्त महात्मा तपस्वी थे। एक बार वह स्टेशन पर II क्लास के डिब्बे में चढ़ने लगे तो उस डिब्बे में एक पठान परिवार सहित बैठा हुआ था। स्वामी जी को गाड़ी के डिब्बे में चढ़ता देख क्रोधावेश से बोला–ओ साधू ! दूसरे डिब्बे में जावो यह II क्लास है. स्वामो जी ने II क्लास की टिकट दिखाकर, मेरी यह टिकट II क्लास की है पठान ने कहा–दूसरे डिब्बे में जाओ यहाँ मत घुसो स्वामी जी ने कहा और डिब्बा II का नहीं है और ऊपर चढ़े तभी पठान ने क्रोधावेश में तत्काल तलवार उठाई साधु को मारने को, गाड़ी चल पड़ी स्वामी जी तत्काल पठान के चरणों में गिर पड़े। अब पठान की तलवार हाथ से छूट गई और आँखों से आँसू की धारा बहाते हुये स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा, क्षमा याचना करने लगा और सारे परिवार को स्वामी जी के चरणों में बिठा-कर कहा---तू सच-मुच सच्चा-कामिल गुरु है तूने मुझ अन्धे को गिरते हुए बचाया अग्नि पर पानी बनाकर मुझ गुनाहगार को शान्त किया यदि तू ऐसा कर्म न करता तो मैं तेरा सर तन से जुदा कर देता, जिसका परिणाम यह होता कि मैं फाँसी पर लटकाया जाता, और मेरा कुन्बा भी बरबाद हो जाता, प्यारे ! जब तक स्वामी जी गाड़ी में बैठे रहे, उसका सारा परिवार

चरणों में सर नीचा किया बैठा रहा। प्यारे! क्रोध को चाण्डाल कहा गया है। क्रोध करने से जीवन की शक्ति का नाश होता है, आयु घटती है, चञ्चलता उत्पन्न होती है, इससे रक्त जल-सड़कर काला हो जाता है। क्रोधी का खाया पीया भी सियाह हो जाता है क्रोधी की सन्तान भी क्रोधी उत्पन्न होती है। अहिंसा का मुख्य कारण ही क्रोध है अहिंसक मनुष्य लोक परलोक से वंचित रहता है यह मानी हुई बात है।

पथप्रदर्शक—हृश्यन्ति = न लम्पट होते हैं किसी बात के पीछे। कोई चीज़ पसन्द है तो लोभ नहीं करते, उसको सारा खाजाने की इच्छा नहीं होती और किसी को हानि नहीं पहुँचाते किसी के प्रति अपराध नहीं करते, यह भावनाएँ जिनके अन्दर होती हैं वह ही लोग शुभ लक्षण युक्त कर्म के पुण्य प्रताप से अमर होकर आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये मार्गप्रदर्शक ज्योति स्तम्भ बने रहते हैं और लोग उनकी रोशनी से लाभ उठाते चले जाते हैं

ओ३म् प्राणायस्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बेऽम्बिके अम्बालिके न म नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वक सुभिद्रकाङ्काम्पी लवासि नीम्ः॥

यजु २३—१८

भावार्थ—हे मनुष्यों, जैसे माता, दादी, परदादी अपनी अपनी सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुँचाती हैं वैसे तुम लोगों को भी अपनी सन्तानों को शिक्षित करना चाहिये, धन का स्वभाव है कि जहाँ यह इकट्ठा हो जाता है उन जनों को निद्रालू, आलसी और कर्महीन कर देता है।

एक (पथप्रदर्शक) सन्त महात्मा रमते हुये एक ग्राम में पहुँचे, देखा वहाँ पर कारखाने तथा स्कूल, अस्पताल, डाकखाना, तार घर, टेलीफोन इत्यादि लगे हुए हैं। आते जाते लोगों में से एक से पूछा, प्यारे! यहाँ पर साधू के रहने का कोई स्थान भी है। उत्तर मिला, धर्मशाला, गुरुद्वारा, ठाकुर द्वारा मन्दिर भी हैं इसके अतिरिक्त एक सेठ भी हैं वहाँ भी ठहर सकते हैं जहाँ जी चाहे। अब साधू एक धर्मशाला में चला गया। जाकर बैठा, वहाँ के पुजारी ने आदर सत्कार किया दोपहर को भोजन एक थाली में परोस सुन्दर रूमाल से ढककर पुजारी ने साधू के आगे रखा, साधू ने भोजन को देखकर पुजारी से पूछा, यह भोजन उत्तम पदार्थों से तैयार कराया हुआ कहाँ से लाया है?

पुजारी---महाराज! यहाँ एक सेठ जी हैं उन्होंने यह धर्मशाला बनवाई है गुरू ग्रन्थ साहब रखवाया हुआ है, जो साधु-सन्त महात्मा अतिथि आते हैं उनके आने पर उनके घर घर जाकर मैं सूचना दे आता हूँ भोजन के समय जाकर भोजन लाता हूँ आए हुए साधु-सन्तों तथा अतिथियों की सेवा कर देता हूँ, पर भोजन वह यथायोग्य तैयार करके देते हैं यह भोजन उनके घर से लाया हूँ---साधू भोजन देखकर हैरान हो गया, कि इतना बढ़िया कीमती भोजन लाया है---और रात्रि को भी पुजारी भोजन व दूध लाया, साधू ने पुजारी से पूछा---इस धर्मशाला में आपके सिवाए और कोई दिन भर में नहीं आता।

पुजारी—महाराज! सारा गाँव सेठ जी के यहाँ काम

करता है---कई गुमाशते--कई नौकर, व्यापार बड़ा भारी चलता है---दूर-दूर देशों में काम करते हैं---काम इतना बड़ा है कि किसी को सर खुजलाने की फुरसत नहीं मिलती, मैं ही गुरू ग्रन्थ साहब को खोलता—पाठ करता हूँ, मेरी सभी आवश्यकताएं सेठ जी पूरी करते हैं चाहे एक मांगू, चाहे सौ—कभी इन्कार नहीं करते और न कभी यह पूछा है कि रुपये लेकर क्या करेगा इत्यादि—दूसरे दिन साधू धर्मशाला से चल कर ठाकुरद्वारा में जा पहुँचा---मन्दिर के पुजारी ने आदर से स्वागत किया—आसन-जल भेंट किया---भोजन के समय श्रद्धा प्रेम भावना से भोजन लाकर साधू को भेंट किया, भोजन कल की भाँति स्वादिष्ट पदार्थों से तैयार किया हुआ देखकर पुजारी से पूछा—यहाँ कहाँ से लाए हो, पुजारी ने कहा, महाराज ! इस मन्दिर का बनवाने वाला यहाँ एक सेठ है। सेठ बड़ा दयालु-धर्मात्मा-श्रद्धायुक्त दानी भी है। द्वार पर आए किसी याचक को खाली नहीं लौटाता---यह भोजन भी उनके घर से लाया हूँ।

साधू---सेठ जी मन्दिर में पूजार्थ किस समय आते हैं ?

पुजारी---महाराज ! सेठ जी का कार्य-व्यवहार बड़ा है कार्य-व्यवहार से उन्हें समय नहीं मिलता। रात के १२-१२ बजे तक जागते रहते हैं---मन्दिर की पूजा-पाठ-सेवा मैं स्वयं करता हूँ।

साधू—सेठ जी किसी साधू-सन्त-महात्मा को मिलने भी आते जाते हैं।

पुजारी---महाराज ! साधू-सन्त-महात्मा स्वयं उनके यहाँ चले जाते हैं वह उनकी सेवा बड़ी श्रद्धा भावना से सेवा करते हैं।

प्यारे-साधू सन्त-महात्मा पारस होते हैं। लोहे को स्वर्ण बना देते हैं, उनका जीवन बड़ा पवित्र-उदार-संसार भर के हित-कल्याणार्थ होता है—सन्त तुलसीदास जी ने कहा है—

एक घड़ी से आधी घड़ी आधी से भी आध।
तुलसी संगत साध की कटें कूट अपराध॥

अर्थात—६ मिनट भी साधू की संगति करने से जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं।

चाहे न सुगति, सुमति संपत्ति कुछ विधि विपुल बढ़ाई।
हेतुरहित अनुराग राम पद बढ़ अनुदिन अधिकाई॥

भावार्थ—वे लोग किसी जीव से या लौकिक दृष्टि से प्रतिकूल माने जाने वाले पदार्थ या स्थिति से कभी द्वेष नहीं करते, वह सब जीवों में अपने प्रभु को तथा सब पदार्थों और स्थिति में प्रभु की लीला को देख देखकर क्षण क्षण में आनन्दित होते हैं।

परोपकार : स्वर्गाय,

अर्थात—परोपकार करने वाला स्वर्ग में जाता है।

ओ३म् अभि त्वा शूर नोनुमोऽदग्धा इव धनेवा।
ईशनमस्य जगत. स्वर्दृश मोशान मिन्द्र तस्थुष:
अ० क० २० सू० १२१ मं० १

भावार्थ—जैसे दूध से भरी गौयें दूध देने के लिए, झुक जाती हैं, वैसे ही मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से भरपूर होकर परमेश्वर की महिमा देखते हुए नम्र होकर संसार में उपकार करें।

ओ३म् त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमेमर्त्तं दधासि श्रवसो दिवे दिवे । यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मय कृणोषि प्रयश्रा च सूरये ।। ऋ० १—३१—७

भावार्थ——हे प्रकाशदेव, जो द्विपद-चतुष्पद या मनुष्य-मनुष्येतर दोनों प्रकार के जीवों के भले के लिए अत्यन्त तृषित है, प्यासा है, उस मनुष्य को तू यश के लिए प्रतिदिन श्रेष्ठामृत पद में पहुँचाता है और उस ज्ञानी पुरुष के लिए तू सुख करता है और आनन्द भी '

नाहं कामये राज्यं नस्वर्गं ना पुनर्भवेम ।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम् ।।

अर्थात——सन्त लोग यह नहीं चाहते कि हमें राज मिले या स्वर्ग प्राप्त हो। किन्तु वह चाहते हैं कि हमें प्राणीमात्र के हिताथ प्यास लगी रहे, और कोई इच्छा नहीं। इसके अतिरिक्त हमसे प्राणीमात्र (केवल मनुष्य को ही नहीं किन्तु पशु जाति) का भला होता रहे।

साधू ने मन में विचार किया, हमने सेठ का अन्न खाया है इसमें श्रद्धा-भावना त्याग-नम्रता भी है परन्तु अमली मार्ग से भूला हुआ है यदि इसको वास्तविक मार्ग नहीं दिखाते तो बड़ा पाप होगा। शेख सादो ने कहा है——

अगर बीनम कि न बीन ओ चाह अस्त
वगर खामोश बा नशीनम गुनाह अस्त

अर्थात——यदि यह देखते हुए कि एक अन्धे के सामने गढ़ा पड़ा है वह वहाँ से गुजरने पर गढ़े में जा पड़ेगा। अति दुःखी

होगा ऐसा दृश्य देखते हुए उसको गिरने से तू नहीं बचाता है तो तू महापापी है। और कहाँ सेठ स्वयं भूल में पड़ा हुआ सारे ग्राम को इसी भूल में डाले जा रहा है इसी एक को भूले मार्ग से बचाने से सारे ग्राम का सुधार उद्धार हो जावेगा और कहा—

एका पापनी करूंते फलं भुंकते महाजना:
भिक्तारो विप्र मुचयन्ते करता दोषेण लिप्यते।

अर्थात्—एक पाप करता है, खाने वाले सब होते हैं परन्तु दन्ड स्वयं भोगता है कोई भी साथी बिना धर्म के नहीं होता—

और कहा, यद्यपि सभी सामग्री मौजूद है, अब साधू सेठ के पास चल पड़ा वहाँ जाकर क्या देखा कि सेठ टेलीफून के पास बैठा है। गद्दियाँ, तकिये लगे हुये हैं, बहुत से मुनीम-मुन्शी क्लर्क अपने अपने काम में लगे हुए हैं। साधू को देखकर सेठ उठ खड़ा हुआ, सर पर पगड़ी, गले में दुपट्टा डाले हुए सेठ ने साधू के चरणों में नत मस्तक हो नमस्कार किया, कर जोड़ करके क्षेम कुशल बड़ी श्रद्धा भावना से पूछा, आसन पर बिठाया उधर से टेलीफोन की घन्टी खड़की, साधू से कहा, महाराज क्षमा करना, मैं जरा टेलोफून सुन लूँ। बार बार टेलीफून सुनते उसका उत्तर देते देते १२ बज गये, अब सेवक, साधू तथा सेठ का भोजन लाया, पहले साधू के हाथ, पाँव धुलाए और भोजन की थाली साधू के आगे धरते हुए सेठ ने कहा—आप भोजन अंगीकार करें और भोजन करें, मैं टेलीफून सुनकर भोजन करूँगा, साधू भोजन कर चुका, परन्तु सेठ टेलीफून पर कान धरे हुए बातें सुन, सुना रहे हैं, थोड़ी देर टेलीफून चुप हुई तो सेठ ने खाना आरम्भ किया, दो चार ग्रास डालने पर फिर टेलीफून खड़की

तो एक हाथ में ग्रास ले रखा है दूसरे हाथ से टेलीफून पकड़ कर कान से लगाया, बड़ी कठिनता से भोजन खाया, रात को भी इसी प्रकार से भोजन खाया, रात को दस बजे तो सेठ ने सेवक से कहा, साधू महात्मा का बिस्तरा कर दो और साधू से कहा, महाराज! आप विश्राम करें, मैं तो १२ बजे सो सकूँगा।

साधू--सेठ जी! मैंने तो आप से बात करनी थी।

सेठ--महाराज! जो वस्तु चाहिये अभी भेंट कर देता हूँ रुपया, पैसा, वस्त्र इत्यादि जो चाहें भेंट कर देता हूँ।

साधू ने कहा, मुझे कुछ नहीं चाहिये। केवल आपसे बात करनी हैं।

सेठ--महाराज, अभी बात करें, यदि निन्द्र आपको न सताती हो। प्रातः मेरे पास विशेष समय नहीं होगा, यहाँ बैठे बैठे करते रहें।

साधू--सेठ जी! मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है, बड़े दानी हो, और भी अच्छे अच्छे काम कर रहे हो, परन्तु कुछ समय मालिक को भी याद कर लिया करो।

सेठ--महाराज! आप दिन भर मेरे साथ बैठे देखते रहे मुझे तो एक मिनट भी समय नहीं मिलता, जो मालिक को याद कर सकूँ। जरा टेलीफून से हटूँ तो हजारों की हेर फेर हो जावेगो।

साधू—यह धन, दौलत, मान किसने दिया है?

सेठ—महाराज! मालिक का दिया हुआ है।

साधू--फिर ऐसे दाता को क्यों भुलाया हुआ है?

सेठ—नहीं महाराज ! भुलाया हुआ कहाँ है जो भी याचक आता है उसे खाली नहीं लौटाता, किन्तु जो भी मुख से माँगता है सो उसे दे देता हूँ भोजन इत्यादि इस ग्राम में कहीं पर भी मुसाफिर, परदेसी, अतिथि, साधू, सन्त महात्मा, गरीब मोहताज आकर रहे, यथा योग्य सामर्थ्यानुसार पहुँचा तथा दे देता हूँ, मन्दिर तथा गुरूद्वारा में पुजारी बैठाए हुये हैं, वह कुछ करते रहते हैं और यहाँ दुकान पर पंडित आकर जप, पूजा-प्रार्थना स्वयं कर जाते हैं, परन्तु मुझसे हो नहीं सकता।

साधू—प्यारे सेठ ! भगवान करे सदा सुखी रहें, परन्तु यदि जब बीमारी, दुःख आजावें, तब तो काम से अनुपस्थिति होती होगी। उस समय यह काम कैसे चलता होगा ?

सेठ—महाराज ! आपकी कृपा से जबसे होश सम्भाला है। आँख पीड़ा तक नहीं हुई, न मैं सैर तथा व्यायाम करता हूँ। खाना-पीना सभी पच जाता है।

साधू—प्यारे सेठ ! कुछ समय प्रभु को अवश्य याद किया करो। अब हम सोते हैं। कवि लिखता है—

है अगर बन्दा प्रभु का, तू सदा कर बन्दगी।
ले प्रभु का नाम तू जब तक है तेरी जिन्दगी॥
शुद्ध कर हृदय पापों से न रहे गन्दगी।
अन्त के दिन ता न हो तुझको कोई शर्मिन्दगी॥

प्रातः साधू उठा, भगवत भजन से निवृत होकर सेठ के पास गया और कहा, अच्छा प्यारे ! अब हम यहाँ से चल कर आपके ठाकुरद्वारे जाते हैं। वहाँ पर रहेंगे, और कहा, जब कोई आवश्यकता पड़े, तो मुझे बुला लेना।

सेठ—महाराज की कृपा—मुझे ईश्वर की कृपा से किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है और न पड़ेगी—भला साधुओं के पास रखा ही क्या है ?

साधू—फिर भी मनुष्य हैं कभी आवश्यकता पड़ जाती है—अब मन में विचार हुआ—सेठ धन के मद में मस्त होकर धन के दाता को भूला हुआ है इसे जगाना चाहिए—अब उठ कर चलने लगे तो सेठ ने नत-मस्तक होकर नमस्कार किया, तो साधू ने अपने योग बल से उसके सर पर हाथ से कोई क्रिया की, कि किसी प्रकार से प्रभु भक्त बन जावें—और चल पड़ें।

सेठ—दोपहर के समय सेठ का खाना आया—खाने लगा, तो टेलीफून की घन्टी बजी—तत्काल उठाकर कान पर धरा, और उत्तर भली प्रकार न दे सके—पूछने वाले बात समझ न सकें, वह बार-बार पूछें यह उत्तर कुछ का कुछ देवें; टेलीफून करने वाला हैरान था कि आज सेठ को क्या हो गया है—कहीं भंग-धतूरा तो शत्रु ने सेठ जी को नहीं पिला दिया, सेठ ने कहा—यदि कोई नशा इत्यादि वस्तु मुझे पिलाई जाती तो सर में चक्कर आते। भोजन अभी खाया है—छाछ भी बड़ी स्वादी थी और आज तक कभी भंग या नशा को कोई चीज प्रयोग नहीं की—पर हैरान हूँ आप मेरी बात नहीं समझ पाते।

मुनीम—सेठ जी ! आपको कुछ हो गया है आप न बात हमारी सुनकर समझ सकते हैं न उसका उत्तर यथार्थ दे सकते हैं. अब सायंकाल का समय हो गया दिन भर में सेठ कुछ सौदा न कर सका, बड़ा उदास होकर घर पहुँचा, स्त्री बात करे—यह उत्तर कुछ और दें।

स्त्री---आपको आज क्या हो गया है ? मैं जो बात करती हूँ आप उसे न समझकर उत्तर उल्टा ही देते हैं।

सेठ---मुझे तो कुछ नहीं हुआ, ठीक ही हूँ।

स्त्री—नहीं स्वामिन ! आपके सर तथा मस्तिष्क में कुछ विकार हो गया है।

सेठ---पत्नी की बातें सुनते सुनते क्रोधावस्था में सो गया परन्तु रात भर निद्रा न आई। प्रातः उठा तो उसे कुछ होश न रहा कि बात क्या करूँ कैसे करूँ घर से चलकर दुकान आफिस में पहुँचा, टेलीफून की घन्टी बजने लगी पर सेठ का ध्यान तक फून की तरफ नहीं जाता।

मुनीम---सेठ जी ! टेलीफून सुनो काफी समय से खड़क रही है। सेठ कहता ह क्या है फिर मुनीम कहता है फून पर बात करो, उत्तर क्या है अब उत्तर सिवाये क्या-क्या के कुछ नहीं होता अब मुनीम ने सभी कार्यकर्त्ताओं को बुलाया। सभी ने बारी बारी से सेठ से पूछा, तो उत्तर 'यह क्या है और क्या' के विना अन्य कोई शब्द ही मुँह से नहीं निकलता। तत्काल डाक्टर, वैद्य, हकीम बुलाए गए और कोई न जान सका कि इतनी जल्दी क्या हो गया है सभी अंग ठीक हैं, पूछा गया कहीं सेठ जी के मस्तिष्क में चोट लगी है या शोक का धक्का लगा है। सभी ने उत्तर दिया, न इनको कोई शोक है न कोई चोट लगी है। खाना खाते-खाते एकदम ऐसी अवस्था हो गई है। डाक्टर वैद्यों इत्यादि ने फिर पूछा, सेठ ने आज क्या खाया था ? सुनकर सब बोले, उसमें भी कोई ऐसी वस्तु नहीं जो बिगाड़ का कारण हो, यह तो ईश्वर की गति ईश्वर

ही जाने । अब सेठ की बीमारी की सब जगह प्रसिद्धि हो गई सभी मित्र, सम्बन्धी, गुमाशते, व्यापारी अपने अपने डाक्टर हकीम इत्यादि लाने लगे । हजारों रुपये खर्च किये जा रहे हैं परन्तु लाभ कुछ भी नहीं, सभी हैरान आश्चर्य में । अन्त में किसी को याद आया कि एक साधू सेठ जी के यहाँ आकर ठहरा था जब दूसरे दिन जाने लगा तो सेठ जी से कहा था यदि आवश्यकता पड़े तो मुझे बुला लेना और कहा साधू सन्त महात्मा हकीम भी पूरे पूरे होते हैं ऐसी बिगड़ी कला को भगवान या भगवान के भक्त सन्त-महात्मा ही ठीक कर सकते हैं ।

पुजारी—वह साधू महात्मा मेरे यहाँ ठहरे हुए हैं । प्रतिदिन सेठ जी का समाचार मुझसे पूछा करते हैं । यदि उसे इस रोग को औषधि मालूम होती तो मुझे बतला देता—किसी ने कहा—भाई ! सन्तों के हाथ में भी भगवान की डोर होती है वह कक्खों-लख कर देते हैं. उन्हें बुला लेना चाहिए । अब पुजारी तत्काल दौड़ा, साधू से सेठ की अवस्था प्रकट करते हुए कहा—महाराज ! आप चल कर सेठ का उद्धार करें ।

साधू—सठ को यहाँ मन्दिर में लाओ, घर में बहुत लोगों से घमासान हो जाता है—बड़ा आदमी है सब खुशामद करने लग जाते हैं—सच्चा हितैषी कोई-कोई होता है ।

पुजारी—घर पहुँचा, सन्त महात्मा का आदेश सुनाया तो सब परिवार-सम्बन्धो-मित्र साथ होकर सेठ जो को मन्दिर में लाए, सभी ने सन्त-महात्मा को नत मस्तक हो नमस्कार किया, प्रार्थना को—महाराज ! सेठ जो अच्छे भले थे, भोजन

खाते टेलीफून को कान से लगाया तो उत्तर कुछ का कुछ देने लगे। अब क्या क्या शब्द के सिवाय और कोई शब्द मुँह से नहीं निकलता। डाक्टरों वैद्यों को बुलाया--सभी इस रोग को देखकर चकित हैं किसी को समझ में कुछ भी नहीं आता--अब महाराज ! आप ही कृपा करो, इस बिगड़ी कला को ठीक कर सेठ जी का उद्धार करो।

साधू--सेठ जी से तुम क्या चाहते हो--मेरे पास कैसे आए हो ?

सेठ--महाराज ! कल्याण चाहता हूँ।

साधू--भाई ! मैं तो कल्याण करता नहीं हूँ।

लोग--महाराज ! आप तो नहीं पर ईश्वर तो है।

साधू--फिर आप सभी ईश्वर से कहो।

लोग--महाराज ! हम तो पापी लोग हैं, जिन्होंने आज तक भूल कर भी उसे क्षण मात्र भी याद नहीं किया, वह फिर हमारी कैसे सुनता है ?

साधू--प्यारे प्रभु ! वह पतित पावन है--कवि लिखता है।

"चुपके-चुपके जो सदा दिल से किया करता है,
निश्चय ही उसको वह मन्जूर किया करता है।"
बारगाहे ईश से मायूस न होना चाहिये।
क्योंकि तू तो इन्सान है वह च्यूँटी की सुना करता है।

और कहा, ईश्वर कोई क्रूर शासक नहीं है, वह तो हमारा माता-पिता है, कहा गया है, भक्त जनों के संकट क्षण में दूर करे। और पूछा, क्या सेठ का कार्य व्यवहार चालू है या बन्द है।

मुनीम---महाराज ! कार्य व्यवहार तो पहले की भाँति चल रहा है कोई बाधा नहीं। सेठ जी का लड़का है, मैनेजर हैं। महाराज! ईश्वर की कृपा ही सभी कार्य कराती है। यदि प्रभु कृपा न हो तो हमें अधेले को कोई न पूछें।

साधू—फिर इसलिए तुम सभी प्रभु की याद नहीं करते, खान-पीने, सोने-जागने-गृहस्थ आनन्द भोगने को और टट्टी-पेशाब, करने तक को अवकाश मिलता है बाकी चोरी प्रभु ने की है, जो याद नहीं आता, भुला दिया है। अब भी तो आप लोग घन्टा दो घन्टे काय व्यवहार छोड़ कर सेठ के पास आकर बैठते हैं।

लोग--महाराज ! घन्टा दो घन्टा से भी अधिक समय आकर बैठते हैं।

साधू---तो क्या तुम्हारा कार्य व्यबहार वैसे पूरा हो जाता है।

मुनीम--महाराज ! हम सभी तो हैरान हैं कि पहले समय न मिलता था, परन्तु अब काम का काम भी हो जाता है और सेठ जी की सेवा भी हो जातो है और कहा, सन्तों का कथन है—

दुःख में सबको समरे, सुख में समरे न कोए।
जे तू सुख में समरें, तो दुख काहे को होए।

साधू--अब तुम सभी मिलकर भगवान से सेठ जी के कल्याण के लिए प्रार्थना करो और आँख मूँद कर गायत्री माता का जाप करो। सविता देव की कृपा से सेठ जी का कल्याण होगा। अब सभी मित्र, सम्बन्धी, परिवार ने मिलकर बड़ी श्रद्धा भावना से एकाग्र चित्त होकर गायत्री जाप आरम्भ

किया, साधू ने सेठ के सर पर हाथ फेरा, गायत्री माता की कृपा से अपनी संकल्प शक्ति को धीरे धीरे प्रविष्ट किया। सेठ कुछ होश में आवेगा, सेठ से पूछा तुमको क्या हो गया था ?

सेठ—(साधू को पहचान कर) जब सेठ मन्दिर में आया था, तब साधू को पहचान न थी न ही माथा टेका था, अब झट माथा टेका, सभी लोग गद्-गद् प्रसन्न होने लगे उसकी धर्मपत्नी को बधाई देने लगे और कहा महाराज ! पता नहीं क्या हो गया था प्रभु की लीला प्रभु ही जाने ?

साधू—सेठ जी ! प्रभु कहाँ है ? तुमको तो फुरसत नहीं थी। अब बताओ तुम कहाँ बैठे हो क्या इन सबों को पहचानते हो ?

सेठ—महाराज ! मन्दिर में हो बैठा हूँ इन सभी को पहचानता हूँ।

साधू—कोई बीती बात तुम्हें स्मरण है उत्तर मिला महाराज ! नहीं। अब साधू ने कहा अब तुम दुकान पर जाओ कल फिर आना और इलाज करेंगे। अब सभी लोग तथा सेठ साधू को नत मस्तक नमस्कार कर चल पड़े दुकान पर बैठे चारों ओर से बधाई-बधाई के टेलीफून आते रहे पर सेठ अभी कार्य व्यवहार के योग्य न था वैसे कार्य दुकान का होता रहा। दूसरे दिन पहले दिन को भाँति सभी मित्र इत्यादि ने सेठ जी के साथ मन्दिर में पहुँचकर साधू को नत मस्तक नमस्कार किया। साधू ने कल की भाँति गायत्री जाप करते हुए सेठ जी के सर पर हाथ फेरते हुए संकल्प शक्ति को प्रविष्ट किया और सभी को अपने अपने कार्य व्यवहार

करने की आज्ञा दी ।

सेठ ने दुकान पर पहुँचते ही पहले पहल यही कुछ पूछा कि मेरी बीमारी पर क्या खर्च आया है और क्या काम हुआ है ?

मुनीम--सेठ जी ! आपको फिर व्यवहार की लग गई भगवान ने अपनी अपार करुणा से अपने प्यारे साधू सन्त महात्मा द्वारा बड़े संकटकाल से बचाया है अब कई दिन तो प्रभु का धन्यवाद गाते । व्यवहार तो प्रभु कृपा से आपके समय से अधिक हो गया है । रोग पर लगभग बीस हज़ार रुपया खर्च हो गया है ।

सेठ घर पहुँचा, स्त्री से कहा--इतना बड़ा रोग था बीस हजार रुपया रोग निवृत्ति पर खर्च हो गया है । बीस हजार का न दान हुआ न पुण्य, व्यर्थ चला गया । कोई ऐसा आज तक पाप भी नहीं किया, न ही किसी को दुःख-कष्ट दिया था यह बीमारी और खर्च क्योंकर हो गया ?

स्त्री--मैं तो परमात्मा का धन्यवाद करती हूँ कि उसकी कृपा से आप संसार में जीवित आ गये हैं रुपया पैसा तो हाथ पाँव का मैल है और भला हो उस साधू महात्मा का मेरी तो सम्मति है कि इस साधू महात्मा को यहाँ ही टिका छोड़ूँ इसका उपकार भुलाने का नहीं है, पता नहीं लाखों रुपये खर्च हो जाते और व्यवहार कार्य का क्या होता मनुष्य की कीमत तो बुद्धि और चेतनता के साथ है जिसकी बुद्धि ठीक नहीं वह मोहताज पराधीन है, चाहे जो धन सम्पत्ति लूट ले जाता आपको पता ही कैसे लगता वर्तमान काल

में तो सारा संसार ही स्वार्थ रूप बना हुआ है चाहे पुत्र हो अथवा परिवार। सेठ की पत्नी की एक एक बात जाग्रत करने वाली थी। तत्काल उठा साधू महात्मा की शरण में जा पहुँचा, कर जोड़ नमस्कार की, चरणों में बैठ गया।

साधू--सुनाओ सेठ जी! दुकान को संभाला है रुग्णावस्था में कैसे कार्य चला ?

सेठ--महाराज! दुकान को तो संभाला है कार्य व्यवहार में तो कोई कमी नहीं हुई हाँ इस रोग निवृति पर बीस हजार रुपया खर्च हो गया है।

साधू--तुम तो कहते थे, मन्दिर में जाने, प्रभु भजन करने का समय नहीं मिलता अब तो काफी अवकाश पा लिया।

सेठ--महाराज! ऐसा अवकाश तो भगवान शत्रु को भी न दें इस जीने से तो मरना अच्छा है। यदि पाँच पैसे पल्ले न होते तो सभी मित्र सम्बन्धी भाग जाते। यदि भाग्य न होता तो दिवाला निकल जाता।

साधू--यह धन तुम्हें पिता ने दिया था या गुमास्तों ने,

सेठ--महाराज! यह भाग्य तो भगवान ने अपनी कृपा से दिया है मेरा पिता तो साधारण आदमी था।

साधू--तभी तुम उस परमात्मा पर नाराज रहते हो—देखा प्रभु की कैसी अद्भुत शक्ति है, कैसे तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा आ गया था, प्यारे सेठ! बुद्धि के बिना मनुष्य पशु समान है यही तुम्हारा अहंकार था, मन्तव्य था, टेलीफून से एक मिनट के लिए जरा जुदा न होते थे, तुम थे तो भी काम भगवान तुम्हारा चलवाता रहा—यदि तुम नहीं थे तो भी काम

चलवाता रहा—आप अब ईश्वर पर विश्वास किया करो—जैसे क्षण भर में तुम्हारी बुद्धि मारी गई थी, ऐसे करोड़पती-अरबपती वालों के दीवाले निकल जाते हैं. आन की आन में शहर के शहर ध्वस्त हो जाते हैं, राजा-रंक बन जाते हैं, अतः उसे नहीं भुलाना चाहिये और कहा—यह मनुष्य जीवन अमूल्य जीवन है संसार सागर से पार उतरने के लिये मिला है—सागर पार होने के लिए शरीर मिला है (यह किश्ती है) इसके साधन यज्ञ-तप-दान ! यदि पानी थोड़ा हो तो बाँस को बल्ली द्वारा पार होगा—यदि पानी अधिक होगा तो वहाँ बाँस की बल्ली काम नहीं करेगी, चप्पू ही के द्वारा पार उतरना पड़ेगा, परन्तु किश्ती को हेर फर से मोड़ने के लिए सुगान होगा—अब यूं समझो—

दान—यह छोटे पानी वाला काम करता है, अर्थात–मनुष्य के अर्थ की रक्षा करता है। यह तुम्हारा दान कर्म ही था जो संकट-विपत्ति आ जाने पर आपका कार्य-व्यवहार धन सुरक्षित रहा।

यज्ञ—यह काम करता है चप्पू का—जैसे किश्ती को पानी इधर उधर घसीटता है तेज बहाव में ले जाता है उसे चप्पू सुरक्षित रखता है—यज्ञ करने वाले का कोई शत्रु नहीं होता—वह सदा यह आहुति डालते समय कहता है– "इदन्नमम्" अर्थात–

मेरा मुझ में कुछ नहीं सब कुछ है तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागेगा मोर॥

तप—यह है सुगान जो किश्ती को सन्मार्ग पर चलाता है कुमार्ग से रक्षा करता है। इसके लिये यम-नियम का पालन करना, इन यम नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये लेखक को लिखी पुस्तक 'प्रेम सुमन प्रसाद' को पढ़ें।

यह साधारण बातें तुम्हारे हित तथा कल्याणार्थ बतलाई

हैं। सेठ के सर पर हाथ फेरते हुये आशीर्वाद देते हुए कहा, अब प्रातः सायं दोनों काल संध्या गायत्री जाप अग्नि होत्र, प्रार्थना, स्वाध्याय नियमबद्ध किया करो और भोजन करने से पूर्व अन्न का दान किया करो तथा रात्रि को सोने से पूर्व निधन, मुसाफिर, अतिथि की सुध ले लिया करो। अपने आपको भगवान का मुनीम समझो, मालिक उसी को समझो, ऐसा करने से सदा सुखी रहोगे।

सेठ—महाराज! आपका मुझ पर बड़ा भारी उपकार है। मैं इस ऋण को उतार नहीं सकता और मेरी तथा मेरी पत्नी की यह शुभ इच्छा है कि आप हमारे यहाँ टिके रहें।

साधू—साधू पक्षी और नदियाँ सदा चलती रहती रहें तो अच्छी हैं तुम्हारी सुध लिया करेंगे। यदि तुमने ईश्वर को न भुलाया तो।

सेठ—साधू महात्मा के चरणों में नमस्कार किया और प्रतिज्ञा की, साधू चला गया। सेठ अब ईश्वर का हो गया।

कवि लिखता है—

जब ग़म नहीं था तेरा, ग़मग़ीन हो रहा था।
ग़मग़ीन तेरे ग़म में, ग़म से बरी हुआ हूँ॥
जब बेफिकर था तुझ से, फिकरें लगी हुई थीं।
जब से है फिकर तेरा, बे फिकर हो गया हूँ।
जब भय नहीं था तेरा, भयभीत हो रहा था।
जब भय हुआ है तेरा, निर्भय ही हो गया हूँ॥
जब तक नहीं दिया धन, निर्धन बना हुआ था।
सब कुछ तुझे ही देकर, अब मैं धनी बना हूँ॥
हँसता था रात दिन मैं, दिल में खुशी नहीं थी।
रो रो के तेरे ग़म में, अब मैं खुश हुआ हूँ॥

"मनुष्य धर्म कर्तव्य"

ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात। तमेव विदित्वऽतिमृत्यु मेति नान्या पन्था विद्यतेऽयनाय ।। यजु० ३१।१८

भावार्थ—यदि मनुष्य इस लोक परलोक के सुखों की इच्छा करें, तो सबसे अति बड़े स्वयं प्रकाश और आनन्द-स्वरूप—अज्ञान के लेश से पृथक वर्तमान परमात्मा को जान कर ही मरणादि अथाह दुःख सागर से पृथक हो सकते हैं, यही सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की भक्ति का माग नहीं है।

हे प्रभु! मेरे जोवन में वह शुभ दिन भी आवे, मैं सब प्रकार के अन्धकार से मुक्त सूर्यवत, प्रकाशमान महापुरुषता के आदर्श कुछ जान सकूं, कुछ पा सकूं, कुछ अपने भीतर धारण कर सकूं, बस, तब तक मृत्यु भयानक दीखती है। उसके पीछे तो मृत्यु, मृत्यु नहीं रहती, हां नित्य, शाश्वत, व्यापक जीवन का उदय हो जाता है।

भगवान की माया कितनी शक्तिशाली है, कि यह जीव जनम मृत्यु के चक्कर में पड़ा हुआ अनेक प्रकार के दुःखों को भोग कर भो इससे छूटने का उपाय नहीं करता, जब यह जीव माता के गर्भ में होता है तो यह कुम्भी नर्क में होता है. पौराणिक ग्रन्थों में इस कुम्भ नर्क का बहुत विस्तार से जिक्र आया है, पहले छै मास तो यह बेहोशी की अवस्था में रहता है, परन्तु इसके पश्चात जब इसका सर और हृदय (मन और बुद्धि) तैयार हो जाते हैं, तो यह अपने बीते जन्मों के पाप

कर्मों का अनुभव करता है पेट के कीड़े इसे काट २ कर खाते हैं न यह उस समय हिल जुल सकता है और न ही अपने इस दुःख को प्रकट कर सकता है, ऐसी अवस्था में दुःख भोगने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं होता, उस समय यह भगवान से प्रार्थना करता है, कि हे प्रभु ! मुझे इस मल सूत्र कुम्भी नर्क से शीघ्र निकालिए, मैंने जो बीते जन्मों में पाप बुराइयाँ की हैं उनको क्षमा कीजिए, क्योंकि आप दयालु हैं अब मुझे नया जनम मिलेगा तो एक पल भी तुम्हारे चिन्तन का त्याग नहीं करूँगा, और न वेद-शास्त्र के विरुद्ध कोई पाप कर्म करूँगा, किसी के साथ अन्याय न करूँगा, किसी का हृदय नहीं दुखाऊँगा, सब जीव-जन्तुओं पर दया करूँगा, अहिंसा धर्म पर दृढ़ रहूँगा, मांस-मदिरा इत्यादि के निकट तक नहीं जाऊँगा, पराई स्त्री को माता समान और पराये धन को मिट्टी के समान समझूँगा, सांसारिक मोह, विषय विकारों से दूर रहूँगा, वैराग्य को धारण कर आत्म ज्ञान के प्राप्त करने का यत्न करूँगा, इत्यादि ।

जब यह जीव विनयपूर्वक इतनी प्रतिज्ञायें कर लेता है तो प्रभुदेव अपनी अपार करुणा से इस कुम्भ नर्क में इसकी सहायता करते हैं, बारीक झिल्ली से इसका सारा शरीर ढक कर पेट के कीड़ों से इसकी रक्षा करते हैं नाभी की नाली द्वारा खुराक पहुँचा कर इसकी पालना करते हैं और ९–१० मास पूर्ण होने पर इसको इस नर्क से बाहर निकालते हैं, इतने दुःख भोगने के पश्चात् जब यह जीव फिर इस संसार की वायु को सेवन करता है तो अपनी सभी प्रतिज्ञाओं को मोह माया

में फँस कर भूल जाता है—बालकपन खेलकूद में, युवावस्था विषय-विकारों में और बुढ़ापा चिन्ताओं में गुजार कर फिर मृत्यु के मुँह में जा गिरता है इसी प्रकार कर्मों का फल भोगने के लिये कई बार मरता और कई बार जन्म लेता है, भगवान की ऐसी आश्चर्य माया है, कि जीव इस कदर दुःख भोगने पर भी इस जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूटने का उपाय नहीं करता कवि लिखता है—

बुढ़ापा जो आया जवानी गई,
हकीकत में सब ज़िन्दगानी गई।
खिज़ाँ का हुआ जब चमन में ज़हूर,
गुलों की कमर गुलस्तानी गई ॥

आगे अग्नि जलती है पीछे सूरज तपता है रात को ठोंड़ी घुटनों में दबाकर और टाँगों को पेट से लगाकर सो रहना पड़ता है। भिक्षा माँगने के लिये सिवाये हाथ के दूसरा पात्र भी नहीं तथा वृक्ष के साया तले सोता है तो जीव आशा के पाश को छोड़ता नहीं, माया की कैसी प्रबल शक्ति है।

जिस प्रकार मेंढ़क सांप के मुख में पड़ा हुआ मच्छर खाने की इच्छा करता है, ऐसे ही मृत्यु के मुँह में पड़ा हुआ यह मनुष्य विषय भोगों को ग्रहण करने में दिन रात लगा रहता है। जिन स्त्री, पुत्र आदि के लिये यह कई प्रकार के पाप कर्म करके, धन उपाजन करता है और युवावस्था का सारा समय बिना ईश्वर भजन सत्संग के नष्ट कर देता है। वही कुटुम्बी बुढ़ापे के आ जाने पर इसका निरादर करते हैं, और उसका

सारा धन तथा कार्य व्यवहार उससे छीन लेते हैं और यूं कहते हैं अब तुम बूढ़े हो चुके हो, तुम्हें इस कार्य व्यवहार और धन पर कोई अधिकार नहीं, तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो चुकी है। तुम सत्तर, बहत्तर हो गये हो, तुम्हारे कारण अब कार्य व्यवहार में घाटा पड़ रहा है। जब इस प्रकार उसकी सन्तान, स्त्री, इत्यादि उसका अनादर करते हैं और धन-माल पर अपना अधिकार जमा लेते हैं, फिर उसको इस संसार की वास्तविक अवस्था का बोध होता है कि यह तो सभी स्वार्थी, कृतघ्न हैं अब उसे इस संसार से वैराग्य होता है और यह हरिद्वार, ऋषिकेश और वृन्दावन इत्यादि सात्विक स्थानों (तीर्थों) पर निवास करने और प्रभु भजन की तरफ रुचि करता है, परन्तु बुढ़ापे के कारण शरीर शिथिल है कई प्रकार के रोगों ने घेरा हुआ है दर्द कमर, जोड़ों का दर्द रहने से टाँगें निर्बल हो जाने के कारण लड़खड़ाती हैं, हाथों और सर में कम्पन, दृष्टि का कमजोर हो जाना, खाँसी के कारण कफ़ का अधिक बढ़ना। दाँतों के न रहने से पाचक शक्ति का बिगड़ जाना और कब्ज का रहना इत्यादि कई प्रकार के रोग उसका नाक में दम कर देते हैं। ऐसी अवस्था में यह पुरुष न ही योगासन और प्राणायाम करके मन को एकाग्र कर सकता है और न ही सत्संग में जा सकता है न किसी साधू महात्मा को सेवा करके ज्ञान को हो प्राप्त कर सकता है, कवि लिखता है—

ए मुरग़े दल उखड़ गए जब बाल व पर तेरे।
कहो क्या करेगा दाम से छुटकर फँसा हुआ॥

फिर पछताता है कि ओहो ! जब शरीर स्वस्थ था, हाथ में धन था, सभी पर शासन था, एक प्रकार का राज्य था सभी सलाह मशवरा करते थे, परन्तु शोक, कि कोई दान न किया, तीर्थ यात्रा न की, भगवान का भजन न किया, अब पछताए क्या होत, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत। जब जवानी थी स्वस्थ था तो महात्मा लोग उसे चेतावनी देते थे कि ऐ मूर्ख ! इस अन्मोल समय को विषय विकार में न गँवा यह समय फिर हाथ नहीं आवेगा यही समय ईश भजन के लिये है बुढ़ापे में कुछ नहीं हो सकेगा।

जवानी में अदम के वास्ते सामान कर गाफिल।
मुसाफिर शब को उठते हैं जो जाना दूर होता है ।।

ऐ ग़ाफिल मनुष्य ! सफर बहुत लम्बा है गफलत की नींद मत सो परन्तु जवानी मस्तानी में भला कौन इन उपदेशों को सुनता है परन्तु बुढ़ापे के आ जाने पर रोगों में ग्रस्त तथा स्त्री-पुत्र और सम्बधियों के बुरे व्यवहारों से दुःखी होकर भगवान से यूँ प्रार्थना करता है--

रे मन चंचल ! तू सदा भजियो न हरि का नाम।
रहो विषय लम्पट हो जाहीं जम के धाम ।।

ए चंचल मन ! तूने भगवान का कभी स्मरण नहीं किया और विषय विकारों में फँसा रहा।

धन ईश दियो जग भीतर जो
बिन बुद्ध गए न कुछ फल पाए।
शुभ सन्तन की नहीं सेवा करी

और विप्रन ते नहीं यज्ञ कराए ।।
नहीं कूप खने जल होत कहीं
घर भीतर न जल-ताल बनाए ।
बल हीनन को सुख दान दिये,
नहीं दीनन के दुख दूर मिटाए ।।

अर्थात भगवान ने जो तुम्हें धन-सम्पत्ति प्रदान की थी उससे तुमने अपनी मलीन बुद्धि के कारण कुछ भी लाभ न उठाया न ही तुमने महापुरुषों की सेवा की, ना ही विद्वान ब्राह्मण से यज्ञ ही कराया, परोपकारार्थ भूमि खोदकर न कूप न तालाब बनवाये ना ही गरीब मोहताज दीन दुःखी को धन से कोई सुख दिया। अर्थात भगवान के दिये धन को शुभ कार्यों में न लगाया।

जग में नाहीं करी गुरू सेवा,
भली और न हरि के मुख नाम उचारे ।
बल हीनन को कटु बैन कहे,
सुख माहीं अचे भव में मद खारे ।।
उर कूमलता मन वाही लगे,
जग लोकन के घर पावक जारे ।
जग में शुभ काज विसारत हूँ,
बुद्धि कौन सुधा सुख पाऊँ मुरारे ।।

अर्थात मैंने संसार में आकर गुरू की भली प्रकार सेवा भी नहीं की और न ही मुख से भगवान का नाम उच्चारण किया, बलहीन, अन्धे, लूले-लंगड़े और मोहताज दीन दुखियों को कड़वे शब्द ही कहे, जिससे उनका कोमल हृदय जल भुन गया।

और लोगों के घरों को आग लगाई। इस संसार में आकर मैंने सब शुभ कर्मों का त्याग किया और कोई शुभ कर्म न किया। हे प्रभु ! मैं कैसे सुख पाऊँ, नाथ ! तूने मुझे यह अमूल्य हीरा मनुष्य जन्म प्रदान किया जिससे शुभ कर्म करके इस मनुष्य जन्म को सफल करता, परन्तु मैंने इस मनुष्य-जीवन के धर्म कर्त्तव्य पर आचरण न किया। किन्तु सारा जीवन धन के कमाने में लगा दिया, इस धन के कमाने में नाना प्रकार के पाप, दुष्कर्म किये गरीबों, मोहताजों, निर्बलों, दीन, हीन, दुखियों, मूर्खों को लूटा। तेरी दी हुई ज्ञान कर्म-इन्द्रियों का दुरुपयोग किया। जिनके मोह वश यह पाप कर्म, धन उपार्जन करने के लिये किये। जिन्हें मैं अपना समझता था उनके हित और कल्याणार्थ अपने तन, मन, धन जीवन तक को खो दिया, अब वह अपने पराए हो गये।

शरीर अब निर्बल हो गया है, देह पलट गई है, आँखों में दृष्टि नाम मात्र रह गई है, दूर का दिखाई नहीं देता, किसी पुस्तक तक को पढ़ नहीं सकता, बचपन के जो साथी थे वह हमें छोड़कर स्वर्गलोक को चले गये, और जो विशेष मित्र हैं उन्होंने भी अब मुँह मोड़ लिया है और सेवक मेरी बात तक नहीं सुनते और मेरे हाथ की लाठी गिर गई है अब इतनी सामर्थ-शक्ति नहीं जो उसे उठा कर पकड़ सकूँ। घर का परिवार सभी मेरी बात तक नहीं सुनते, कुछ मुख से बोलूँ, तो तत्काल एक शब्द के बदले बीसियों कड़वे शब्द बोलते हैं और कहते हैं एक तरफ चुपचाप पड़े रहा करो। किसी कार्य व्यवहार बातचीत में दखल मत दिया करो, और कोई सलाह

सम्मति देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, हाथ में लकड़ी पकड़ो दरवाज़े पर पड़े हुए कुत्तों को भीतर मत आने दो। और यदि मैं आराम करने को जरा लेटता हूँ तो कहते हैं तू पाँव पसार कर लेटा रहता है कोई काम काज नहीं करता।

नाथ! अब मुँह से दाँत निकल चुके हैं मेरे घर वाले मुझे वह भोजन देते हैं जो आग से जला-भुना और सख़्त होता है जो मुझसे दाँत न होने के कारण चबाया नहीं जाता, यदि मुख से कुछ कहता हूँ कि प्यारे! मेरे दाँत नहीं हैं मुझसे यह भोजन चबाया नहीं जाता, कृपया कुछ नर्म बनाकर देने का कष्ट किया करो—तो तत्काल आवेश में आकर कहते हैं, क्या तेरे लिए पूड़े तला करें नाथ! इन बातों को सुनकर मेरा हृदय अति दुःखी होता है कुछ करते धरते नहीं बनती।

कवि लिखता है—

भूल कर हमने खुद को कैसा अन्धा किया।
अपने घर के बीच में आप ही को गुम किया॥

हे दीनबन्धु—मैंने अनमोल मनुष्य शरीर धारण करके इस संसार में कुछ भी शुभ कर्म न कर पाया, मेरी बीती सारी अवस्था को आप जानते हो, क्या क्या दुःख प्रकट करूँ, तुम ही हृदयों के भेद-भाव को जाननहार हो, पतित पावन हो, निःसहायकों के सहायक हो—निर्बलों के बलदाता—दीन-हीन-दुखियों की पुकार को सुनने वाले हो। मेरा अब तुम बिन कोई आसरा-सहारा नहीं, मेरे पापों-दोषों को अब न देखो—मैं परीक्षा देने के योग्य नहीं, आजमाए जाने के योग्य नहीं—नाथ! अब दया करो, बीती सो बीती, अब रहो सही बिगड़ी अवस्था में मेरा [illegible] सुधार संवार करो। इस डूबती नौका

को चप्पू लगा कर पार करो, पुत्र-कपुत्र, खरा-खोटा, नेक-बद जैसा—कैसा भी हूँ तेरा ही जाया हूँ, तेरे दर को छोड़कर कहाँ जाऊँ। बस नाथ! अब मैं तेरा होना चाहता हूँ। मुझे अपना ले! अपना ले!! अपना ले!!!

"नमस्कार"

हे ईश्वर करुणा के धाम,
बार-बार तुझको नमस्कार।
सबसे सूक्ष्म सबसे महान्,
नमस्कार तुझको भगवान॥
अजर अमर अविनाशी स्वामी,
घट-घट वासी अन्तर्यामी।
व्याप रहे हो बाहर भीतर,
बार—बार तुझको नमस्कार॥
तुम हो सागर मैं हूँ मीन,
तुम दाता हो मैं अति दीन॥
अपनी भक्ति का दो दान,
नमस्कार तुझको प्रणाम॥
सुख शान्ति का होवे राज,
मिट जायें सब दुःख सन्ताप।
सारे विश्व का हो कल्याण,
नमस्कार तुझको भगवान॥
हृदय के खोलो द्वार,
दूर करो अज्ञान-अन्धकार।
सत्य विद्या का हो प्रकाश,
यही विनय है मेरी भगवान॥

"राजा-प्रजा का कर्तव्य"

ओ३म् अवत्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेन मुदन् । क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे सिफायाः ऋ० १—१०४—३

भावार्थ—जो प्रजा का विरोधी राजपुरुष व राजा का विरोधी प्रजा पुरुष है वह दोनों निश्चय है कि सुखोन्नित को नहीं पाते और जो राजपुरुष पक्षपात से अपने प्रयोजन के लिए प्रजा पुरुषों को पीड़ा देकर धन इकट्ठा करते हैं तथा जो पुरुष चोरी व कपटादि से राज धन नाश करता है। वे दोनों जैसे एक पुरुष की दो पत्नी आपस में कलह करके क्रोध से नदी के बीच गिर कर मर जाती हैं, वैसे ही शीघ्र विनाश हो जाता है। इससे राजपुरुष प्रजा के साथ, प्रजा पुरुष राजा के साथ विरोध छोड़कर परस्पर सहकारी होकर सदा अपना बर्ताव करना चाहिए।

संसार में जिसे हम अपना मानते हैं अर्थात जिसमें अपनत्व की भावना होती है उसी से अपना प्रेम होता है। प्रकृति का यह अटल नियम है कि जिस वस्तु में मेरापन नहीं होता, जिसे हम अपना नहीं समझते उसके नष्ट होने में दुःख का अनुभव भी नहीं होता। मेरेपन की यह भावना कहीं पर घनिष्ट रूप में रहती है और कहीं पर साधारण, जैसे स्त्री और बहिन। बहिन में भी अपनापन है और स्त्री में भी, यदि बहिन अस्वस्थ हो जाए तो उसकी भरसक सेवा सुश्रूषा तो करेंगे किन्तु पत्नी

जैसी नहीं, पत्नी के अस्वस्थ होने या मृत्यु होने पर जैसी मानसिक वेदना होती है वैसी बहिन के प्रति नहीं होती। उसका कारण यह है कि बहिन में अपनेपन के अतिरिक्त परायापन भी है, हम यह जानते हैं कि इसकी जिम्मेदारी जितनी अपने पर है उससे अधिक उसके पति पर है। इसी प्रकार अन्य वस्तु के सम्बन्ध में है धन, पिता, पुत्र आदि जिसमें भी अपना जितना ममत्व है उन्हीं के नष्ट होने में अथवा दु:ख सुख में उसी अनुपात से शोक और हर्ष होता है स्त्री-पुत्र आदि से कष्ट और अपमान मिलने पर भी मनुष्य यथासम्भव सहन ही करता है, मानसिक वेदना को सहन करते हुए विशेष ममत्व के कारण वह उनसे सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सकता, जिस समय हमारा ममत्व किसी वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष के प्रति उत्पन्न होता है, उसी समय हमारी सद्भावनाएँ उसके प्रति जाग्रत हो जाती हैं। कल्पना कीजिए किसी नवयुवक का विवाह आज हुआ कल रात्रि को भाँवरें (फेरे) पड़ीं प्रातःकाल जनवासे में ही सब बरातियों के सामने उसने सुना कि उसकी सद्य परिणीता पत्नी को विषूचिका (कालरा) हो गया है ऐसा सुनते ही उस युवक की अन्तर्दशा पर विचार कीजिये। यदि दो दिन पहले उस कन्या को विशूचिका होता तो उस युवक की मानसिक स्थिति आज की जैसी कदापि न होती। क्योंकि उस समय उस कन्या के प्रति युवक की अपनत्व भावना नहीं थी जो आज गठबन्धन होते ही बन गई।

[illegible] भंगुर मायामय संसार में अपनत्व और ममत्व की

ऐसी धारणा बनाकर मनुष्य सुख की इच्छा करता रहता है। इच्छा करने हो से तो सदैव सुख की प्राप्ति होती नहीं क्योंकि प्रत्येक सांसारिक सुख में दुःख छिपा रहता है। आज जो व्यक्ति प्रेमास्पद है कल वही घटना विशेष के कारण घृणास्पद बनकर दुःख का हेतु बन जाता है। जो वस्तु आज सुन्दर और सुखद प्रतीत होती है कुछ समय पश्चात् हम उसे फूटो आँखों से भी देखना नहीं चाहते, प्रभु की यही लीला आशा और निराशा के हिन्डोले में जीवन के अन्तिम क्षणों तक झुलाती रहतो है इस अन्तर्द्वन्द्व से त्राण पाने के लिये सदा सुख सागर में मग्न रहने के लिए गोस्वामी तुलसोदास जी ने श्री रामचरित मानस में लिखा है।

जननी जनक बन्धु सुत दारा।
तन धान धाम सुहृदय परिवारा॥
सब कर ममता ताग बटोरो।
मम पद मनहि बाँधि बर डोरी॥

अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगन्नियन्ता आनन्द सिन्धु से सृष्टि की उत्पत्ति और संहार होता है, जिनकी कृपा से एक बिन्दु मात्र से त्रैलोक्य आनन्द का अनुभव करता है, अर्थात् जो सभी सुखों के अधिष्ठाता हैं। मानव देहधारी जीव यदि उन्हीं करुणासागर के पावन पुनीत के चरणों में अपना ममत्व और अपनत्व समर्पण कर दें तो उनके हृदय में भी आनन्द का महासागर हिलोरें लेने लगेगा, जैसे अग्नि में वस्तुएँ अग्निमय हैं इसी प्रकार भक्त भी भगवतमय हो जाता है, वास्तव में केवल भगवान ही तो अपने हैं और यह सब कुछ पराया है।

जिन्हें हम अपना माने बैठे हैं, वह स्वप्न में भी अपने नहीं हो सकते। यदि ऐसा होता तो अपनी इच्छा के विरुद्ध अपनी कहलाने वाली नन्हीं सी सन्तान क्यों अकाल में ही काल कवलित हो जाती है ? अपना शरीर क्यों अनिच्छा से शिथिल होने लगता है ? नेत्रों को ज्योति क्यों क्षीण हो जाती है। तात्पर्य यह है कि अपना शरीर भी अपना नहीं है तो अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में कहना ही क्या ? ऐसा विचार करके एक मात्र प्रभु को ही अपना सर्वस्व बना लेने से जीवन सुखी व्यतीत हो सकता है जब भगवान ही अपने बन गये तो उनके नाते से सभी अपने बन जाते हैं। गुरू नानक देव महाराज ने कहा है 'जें तु उसदा ही रहे, सब जग तेरा हो।' परन्तु मनुष्य की ऐसी दृढ़ धारणा देहाभिमान के नष्ट होने पर ही बन सकती है, देह दृष्टि से ही स्त्री-पुत्र आदि अपने जान पड़ते हैं। जीव दृष्टि से न कोई पुत्र है न स्त्री और न कोई सम्बन्धी। जीव को दृष्टि से तो समस्त जीवों के अधिष्ठाता परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नहीं, उन्हीं की ज्योति से यह संसार ज्योतिर्मय प्रतीत होता है। समस्त जीवधारी उसी एक महाशक्ति से गतिशील और शक्तिमान है। जो शक्ति अपने अन्तर में जागरूक है वही शक्ति अपनी स्त्री-पुत्रादिक तथा सर्व संसार में कार्यशील है इस दृष्टिकोण से सभी अपने बन जाते हैं, कोई पराया नहीं रहता, क्योंकि फिर तो अपने उसी प्रेमास्पद का प्रतिबिम्ब सभी में प्रतिबिम्बित दिखलाई पड़ने लगता है। मोहजनित अज्ञान से पहले जिस रूप में हम अपने स्त्री पुत्रादिकों को अपना मान रहे थे उसमें और इसमें इतना

अन्तर है जैसा पीतल और स्वर्ण में, पहले स्वयं मालिक बन कर सुख दुःख का अनुभव होता था। किन्तु अब तो सब कुछ भगवान का समझ कर मुनीम की तरह दुःख और सुख हृदय को आन्दोलित नहीं कर सकेगा, मोह और प्रेम की यही परिभाषा है।

जप, तप, स्वाध्याय, सत्संग के प्रभाव से भगवान को अपना सर्वस्व कहने वाले मनुष्यों को विचार करना चाहिए, कि वास्तव में क्या हम भगवान को अपना सर्वस्व मानते भी हैं या केवल वाणी से ही कहते हैं; यदि भगवान ही अपने हैं तो हम उनके लिये कौन सा कष्ट सहन करते हैं, यदि हम अपने शरीर के सम्बन्धित चार-छः प्राणियों के निमित्त अहर्निश पुरुषार्थ करने में संलग्न हैं, अथवा उनके सुख दुःख से सुखी-दुखी होते हैं तो वास्तव में क्या यह विडम्बना मात्र नहीं है? धोखा नहीं है? इस क्रिया से तो स्त्री, पुत्रादि ही अपने हुए, भगवान तो पराये ही सिद्ध हुए, भगवान की मूर्ति अथवा चित्र मात्र को ही भगवान मानकर पूजा करने वालों को सावधान होने की आवश्यकता है। भगवान को चन्दन लगाने, माला पहनाने अथवा आरती उतारने मात्र से ही वह प्रसन्न नहीं होते, वे तो सबमें भगवान को देखकर जो सभी प्राणियों के हित में रत रहता है उसी से प्रेम करते हैं, उसी को प्राप्त होते हैं। भगवत भक्तों तथा परमार्थ के पथिकों को प्रतिज्ञा करनी चाहिए, कि हम कदापि चार-छः प्राणियों के बन्धन में बँध कर अपने देव दुर्लभ मानव जीवन को नष्ट नहीं करेंगे, सभी प्राणी भगवान के हैं, भगवान मेरे हैं इसी तरह सभी प्राणी मेरे हैं। स्त्री और पुत्रों के लिये ही केवल हमारा कर्त्तव्य नहीं

है, जो कर्त्तव्य सभी के लिए है वही उनके लिए भी है। आज से यह संकल्प करना चाहिए कि सारा विश्व मेरा है और मैं सारे विश्व का हूँ। भगवत्त कृपा से मुझे प्राप्त है उसके द्वारा मैं विश्व की कौन-सी सेवा कर सकता हूँ, भगवान की यही वास्तविक सेवा और पूजा है। दूसरों के दुःख दूर करने के लिए, यदि छोटी से छोटी सेवा का अवसर भी प्राप्त हो तो किंचित संकोच नहीं करना चाहिए, वरन् अपना परम सौभाग्य मान कर भगवान को कृपा का सम्पादन करना चाहिए, कि मेरे उत्थान के निमित्त परम दयालु प्रभु ने ऐसा सुन्दर संयोग उपस्थित किया है, सबकी सेवा करते हुए अपनी सेवा कराने की छिपी हुई वासना को नष्ट करने से अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल बनता है, अपने को स्वामो न मान कर सबका सेवक मान लेने से जो आनन्दानुभव होता है वह अनिवर्चनीय है। तात्पर्य यह कि भगवान सीमित नहीं हैं वे तो सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर हैं यह विश्व उसो का विराट् स्वरूप है, उसके विराट् में मैं भी एक क्षुद्र जीव उन्हीं की लीला का एक पात्र हूँ, ऐसो धारणा के द्वारा जो व्यवहारिक जीवन बनता है वह जीवन धन्य है, फारसो का कवि लिखता है—

हासिल नाशव्द तुरा रज़ाए,
ता खातिरे बन्दगान न जोई।
स्वाही कि खुदाए बर तो बख़श्द,
ता ख़लकख़ुदाए कुन न कोई॥

अर्थात्—जब तुझे मालूम है कि दिलों के अन्दर परमात्मा का निवास है। तो तेरा कर्तव्य है हर एक हृदय का मान कर,

जब तक तू इन्सान को दिलजोई नहीं करेगा तब तक अपने मालिक को रज़ा को हासिल नहीं कर सकता। यदि तू चाहता है कि परमात्मा तुझ पर दया करें तो तू उसको मखलूक के साथ नेकी कर। कवि लिखता है—

मानुष्य सोई जानिये करे मनुष्य का काज।
मानुष्य सेवा के लिए कभो न आवे लाज॥
कबीरा सोई पोर है जो जाने पर पीड़।
जो पर पीड़ न जाने, वह काफिर बे पीर॥

सत्य तो यह है कि महापुरुष बनने के लिये मनुष्य में जिस पदार्थ का होना अनिवार्य है वह है परदुःख कातरता आप कष्ट उठाकर दूसरे को सुखी बनाने की उत्कट लालसा और सामर्थ्य। कोई व्यक्ति चाहे धनी या कंगाल, शिक्षित हो या अनपढ़, दुर्बल-काय हो, या बलिष्ट, रूपवान हो या करूप, यदि वह अपना जीवन संसार की सेवा करके उसके दुःखों को दूर करने में लगा देता है तो वह निःसंदेह महापुरुष है। भगवान बुद्ध, महात्मा सुकरात, प्रभु ईसा, श्री मोहम्मद, संत गुरु नानक देव जो किस विश्व-विद्यालय के स्नातक या आचार्य थे। ऋषि दयानन्द और महात्मा गाँधो कौन से धन-कुबेर विज्ञानाचार्य थे? अमरीका का राष्ट्रपति लिङ्कन जिसने दास प्रथा का अन्त किया, इतना कुडौल था कि उसकी पत्नी भी उसको खिल्ली उड़ाया करती थी। केवल पर दुःख कातरता के देव दुर्लभ गुण ने ही उसको जगद्वन्द्व महापुरुष बना दिया था। सन्त कबीर ने ठीक कहा है,

सुख देवें दुःख को हरें करें क्षमा अपराध।
कहे कबीर वे सब मिलें परोपकारी साध॥

जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, मनुष्य स्वार्थ त्याग और निष्काम सेवा द्वारा ऊँचा उठकर लोकोत्तर महापुरुष बन जाता है। राजनीति के क्षेत्र में वह जनता को अन्यायो, अत्याचारो और निरंकुश शासन से मुक्ति दिलाकर धर्म के क्षेत्र में वह जनता के दुर्गुणों को दूर करके उनके जावन को शान्त और सुखमय बनाकर विज्ञान के क्षेत्र में वह दुःसाध्य रोगों के उपचार और औषधियाँ मालूम करके या मानवीश्रम को घटाने वाली मशीनों और उपकरणों का आविष्कार करके समाज की सेवा कर सकता है और लोकोत्तर-विभूति बन सकता है। महापुरुष का जीवन क्षेत्र ऐसा होता है कि वह किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं, किन्तु विश्व प्रेम और न्याय-बुद्धि से प्रेरित होकर ही समाज से दैन्य दुःख एवं पराधीनता को उखाड़ डालने के लिए अपने सम्पूर्ण मन-प्राण को लगा देता है। उसका उद्देश्य जनता का कल्याणमात्र रहता है। जनता उसे अपना परित्राता मानकर उसका जयगान करती है।

धीर मानव

निन्दन्तु नीतिनिपुण यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समा
विशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु
युगान्तरे व, न्याय्यात पथः प्रविचलन्ति पदं न
धीराः॥ (भर्तृहरि)

नीतिज जन निन्दा करें अथवा करें संस्तुति कभी।
धन अधिकता पास हो अथवा चला जाय सभी॥
आज हो हो मृत्यु अथवा युग युगान्तर में कभी।
निज न्याय पथसे धीरजन विचलित नहीं होते कभी॥

भारतीय संस्कृति के वातावरण के कारण प्राचीन भारत में घर-घर स्वर्ग जैसी शान्ति एवं सद्भावनाओं का निवास रहता था। पिता-पुत्र के बीच कैसे भव्य और पवित्र सम्बन्ध थे इसका उदाहरण देखना हो, तो विमाता की आज्ञा से १४ वर्ष के लिए वनवास जाने वाले भगवान रामचन्द्र जी, अन्धे माता-पिता को कन्धे पर काँवर में बिठाकर तीर्थ कराने वाले श्रवणकुमार पिता के दान पर यमपुर खुशी-खुशी प्रस्थान करने वाले नचिकेता, पिता को सन्तुष्ट करने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पवित्र और दृढ़ व्रत लेने वाले भीष्म का चरित्र पढ़ लेना चाहिये। भाई-भाई के प्रति क्या कर्त्तव्य है इस सम्बन्ध की झाँकी लेनी हो तो मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र-लक्ष्मण और भरत का चरित्र पढ़ लेने से सहज ही हो जाता है। कौरवों को जब यक्षों ने बन्दी बना लिया था तो युधिष्ठिर ने भ्रातृप्रेम से वशीभूत होकर, कटुता होते हुए भी, उन्हें शत्रु से मुक्त करवाया था। (विस्तारपूवक पितृ भक्ति, पितृ कर्त्तव्य का बोध प्राप्त करने के लिये लेखक की 'पितृ यज्ञ प्रसाद' पुस्तक को पढ़कर लाभ उठावें —लेखक) सच्चे मित्र कैसे होते हैं, इसका उदाहरण श्री कृष्ण महाराज ने सुदामा और अर्जुन के साथ अपना कर्त्तव्य पालन करके दिखाया था, कहाँ द्वारिका के राजा कृष्ण और कहाँ एक सुदामा, परन्तु धन और ऐश्वर्य मित्रता के मार्ग में बाधक न बन सका, प्रेम सहानुभूति, दया, करुणा भाईचारे के सामने धन और ऐश्वर्य न टिक सका।

पति पत्नी के बीच में कैसे आदर्श सम्बन्ध होने चाहिए।

इसके असंख्य उदाहरण भारत में मिलते हैं जो हमारे यहाँ पत्
व्रती पुरुष और पतिव्रता नारियों ने पग-पग पर उपस्थित कि
है। भगवती सीता, सावित्री, शैव्या, दमयंती, गन्धारी, अनुसू
सुकन्या की कथाएँ भारत में आज भी घर-घर गाई जाती है
(विशेष स्त्री जाति के धर्म कर्त्तव्य को जानने के लिये लेखक
"नारी धर्म कर्त्तव्य प्रसदा" पुस्तक को पढ़कर लाभ उठा
लेखक)। पर स्त्री को माता एवं पुत्री समझने वाले भी स
कोई थे। छत्रपति शिवाजी द्वारा यवन कन्या को आदर से सु
क्षित रूप में पहुँचा देना, हैदराबाद (दक्षिण) में महाशय रामच
जी को एक मुसलमान मौलवी ने अन्तिम (मृत्यु) समय अपनी
कन्याएँ सौंपते हुए कहा—आप ही इनके पितारूप बनकर विव
कर देना तो म० रामचन्द्रजी ने उन्हें अपनी पुत्रियों की भाँ
पालन-पोषण कर उनके धर्मानुसार दोनों कन्याओं का विवाह
मुसलमान युवकों के साथ कर दिया ऐसे असंख्य प्रसंग हमारे इ
हास में भरे पड़े हैं। भीष्म और हनुमान जैसे अखण्ड ब्रह्मचा
भारत में प्रचुर संख्या में मिलते हैं। विश्व में शायद ही को
ऐसा देश होगा जहाँ ऐसे अद्भुत उदाहरण इतनी बड़ी सं
में मिल सकें।

अतिथि सत्कार भारत में एक धार्मिक कृत्य है। अति
को हम देवता मानते हैं, शायद भारत ही वह देश है। ज
अतिथि भावना इतनी ऊँचाई पर पहुँच पाई है अतिथि की से
और सत्कार के लिए मोरध्वज का अपने पुत्र तक दे देना, दुर्भि
पीड़ित समय में अनेक दिनों से भूखे ब्राह्मण परिवार का अप
थाली की रोटियाँ चाण्डाल को दे देना। आदि अनेक प्रका

स्तम्भ महाभारत में देखे जा सकते हैं। कबूतर जैसे छोटे से पक्षी की रक्षा के लिये राजा शिवि ने अपना माँस काट-काटकर दे दिया था और जीवन की जरा भी परवाह न की थी. इसी प्रकार महारानी कुन्ती ने ब्रह्मण कुमार के बदले में अपने पुत्र भीम को राक्षस का आहार बनने के लिये भेजा था। यह सभी उदाहरण भारत के इतिहास में एक उच्चादर्श के सूचक हैं। (विस्तारपूर्वक अतिथि यज्ञ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये लेखक की "अतिथि यज्ञ प्रसाद" पुस्तक को पढ़ें)। अपने स्वार्थ, सुख-साधन, धन-सम्पदा संग्रह, ऐश आराम को लात मारकर अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए लोकसेवा और परमार्थ का जीवन व्यतीत करने में भारतीय व्यक्ति अपने जीवन की सफलता मानते रहे हैं। गौतमबुद्ध अपने राजपाट और सौभाग्य को छोड़कर हिंसा और अज्ञान में डूबे संसार को दया और आत्मज्ञान की शिक्षा देने के लिए निकल पड़े थे। जहाँ एक ओर विपुल धन-ऐश्वर्य, वहाँ दूसरी ओर घोर त्याग, संयम और वैराग्य। भगवान बुद्ध जब अपनी लीला समाप्त करने लगे थे, तो उनके प्रिय शिष्यों ने कातार होकर उनसे पूछा—भगवन ! आप तो मुक्ति के लिये प्रयाण कर रहे हैं अब हमारा मार्ग-दर्शन कौन करेगा तो भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया—जब तक संसार में एक भी प्राणी बंधन में बँधा हुआ है तब तक मुझे अपनी मुक्ति की कोई कामना नहीं है। मैं मानवमात्र का उत्कर्ष करने के लिये बार-बार जन्म लेता और मरता रहूँगा। ऐसी थी उनकी लोकहित की भावना अपने लिए कुछ नहीं।

ऋषि दयानन्द महाराज भी घोर साधना करते हुए हिमा-

लय गए थे। यहाँ वह ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि लोक सेवा ही सर्वोत्तम योग साधना है। स्वामी जी यह लोक सेवा का अमूल्य उपदेश लेकर तपस्या से लौट आये और जीवन भर जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों से आबद्ध अज्ञान ग्रस्त जनता में सदज्ञान का प्रचार करने में ही अपनी साधना मानते हुए उन्होंने जीवन समाप्त कर दिया। जनता को रूढ़ियों से मुक्तकर आडम्बर शून्य जीवन की ओर उन्मुक्त करना ही उनके जीवन का चरम लक्ष था।

भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए गुरू शिष्य की प्रशस्त परम्परा रही है। हमारे देश में गुरू-शिष्य की परम्परा का शरीर का सम्बन्ध नहीं था, किन्तु आत्मा से है। साधक का जीव गुरू के जीव का शिष्य बनता है, इसलिये गुरू के शरीर त्याग के पश्चात् भी उसको उनकी निर्बाध प्रेरणा मिलती रहती है। हमारे यहाँ गुरू आत्मरूप है, देह रूप नहीं। शिष्य भी तब ऐसे ही होते थे यह गुरू के लिए बलिदान करने को सहर्ष तैयार रहते थे।

आप पूछेंगे, भारतीय संस्कृति में पले हुए राजा कैसे होते थे इसके सम्बन्ध में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं परन्तु यहाँ पर आपके सन्मुख रखने को संक्षेप रूप एक-दो उदाहरण दिये जाते हैं। इसका एक उदाहरण राजा जनक के चरित्र से मिल सकता है। वह प्रजा की सेवा को ही अपने जीवन का महानतम उद्देश्य मानते थे, और सच्चे अर्थों में प्रजा के सेवक थे। अपने जीवन निर्वाह के लिए वे परिश्रम करके स्वयं कमा लेते थे और राजकोष से अपने व्यय के लिए एक कौड़ी

नहीं लेते थे। जनक राजकार्य व न्याय व्यवस्था अपना कर्त्तव्य माना करते थे और जीविका के लिए स्वयं खती करके अन्न उत्पन्न कर लेते थे, स्वयं सब श्रम करते थे और उन्हें जन-जीवन के कष्टों का भी पर्याप्त ध्यान था। जन-जीवन में साधारण व्यक्तियों की तरह दिलचस्पी लेते थे।

राजा बिक्रमादित्य प्रजा की वास्तविक स्थिति परिचय प्राप्त करने लिए भेष बदल कर प्रजाजनों की कठिनाइयाँ जानने के लिए घूमते रहते थे, प्रजा की सच्चो सेवा उसकी उन्नति और खुशहाली के लिए सदा सर्वदा सब कुछ करने को प्रस्तुत रहना, उसको सुख सुविधाओं को बढ़ाना, यही उनका प्रधान लक्ष्य था। अपने व्यक्तिगत लाभ की कभी कोई कामना उन्होंने नहीं की, वे सदा निष्पक्ष भाव से सत्य को रक्षा करते रहे। अपराध के प्रति वे कठोर रहे, चाणक्य का जीवन भारतीय संस्कृति का एक नमूना है। विश्व का यह अद्भुत कुशाग्र बुद्धि कूटनीतिज्ञ एक फूँस की झोंपड़ो में गरीब लागों की भाँति अपना जोवन व्यतीत करता था और राज्य कोष में से अपने व्यक्तिगत व्यय के लिए कुछ नहीं लेता था कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति में वे मूलभूत तत्व, वे उच्च-आदर्श वह नैतिकता, वह त्याग, तपस्या, बलिदान' संयम की भावनाएँ भरी पड़ी हैं जिनके वातावरण में रहने से यहाँ पुरुषों का जन्म हो सकता है। शास्त्रकार कहते हैं—

परोकाराय वहन्ति नदिया, परोपकाराय दुहन्ति गावा.।
परोपकाराय फ़लानि वृक्षाः, परोपकाराय मिदं शरीर।।

अर्थात्—नदियाँ अपना पानी स्वयं नहीं पी जातीं, किन्तु दूसरों को पिलाती हैं। फलदार वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, दूसरों को खिलाते हैं। गौएँ अपना दूध स्वयं नहीं पीतीं दूसरों के लिए रखती हैं।

प्यारे! अन्त में पूछा जावेगा, कवि लिखता है—

कभी तू काक भी आया किसी आफत रसीदा के
कभी दामन से पूँछे तूने आँसू आबदीदा के
किसी गुम करदा राह की, खिज़िर बनकर रहनुमाई की
किसी की दस्तजीरी को, किसी से कुछ भलाई की
भलाई कर कि वह तुमको भलाई का समर देगा
तेरा दामन वह उम्मेद के फूलों से भर देगा

मनुष्य को दो कमियों को दूर करना चाहिये, एक भूख दूसरा नंग जो अपनी भूख तथा नंग को मिटाता है वह पशु है जो दूसरों की भूख-नंग को मिटाता है वह मनुष्य देवता होता है।

दो प्रकार की भूख व दो प्रकार का नंग होता है, एक शारीरिक दूसरा आत्मिक। शारीरिक भूख के मिटाने वाला मनुष्य और आत्मिक भूख के मिटाने वाला देवता कहलाता है। शरीर की भूख पेट में और आत्मा की भूख हृदय में होती है शरीर का नंग धड़ से और आत्मा का नंग आँख से प्रतीत होता है। शारीरिक भूख रोटी से और नंग कपड़े से दूर होता है तथा आत्मिक भूख भक्ति से और नंग ज्ञान-सदाचार से दूर होती है। जिस मनुष्य का आचार भ्रष्ट है वह निर्लज और आँख चिट्टी कर देता है, शुद्ध ज्ञान के न रहने से सदाचार

नहीं रहता। सदाचार के न रहने से मनुष्य मृत्यु समान होता है क्योंकि पशु की मृत्यु होती है प्राण के निकलने से तथा मनुष्य की मृत्यु होती है सदाचार के न होने से। सदाचार की प्राप्ति होती है शुद्ध विचार से—शुद्ध विचार तब होगा जब मनुष्य का व्यवहार शुद्ध होगा। व्यवहार की पवित्रता, शुद्ध आहार से। अब निश्चित हुआ, बिना शुद्ध आहार के शुद्ध व्यवहार, शुद्ध विचार, शुद्ध आचार प्राप्त नहीं हो सकता। वर्तमान भारत की ओर सभी देख रहे हैं हमें इस स्वतन्त्रता के प्राप्त करने में कैसा आहार मिल रहा है---कोई भी वस्तु वर्तमान भारत राज्य में शुद्ध नहीं मिल रही। अहिंसक आत्माएँ कभी भारत में राज्य-शासन अपने अचरित्र द्वारा नहीं कर सकती हैं जब आहार पशुपन का है तो वृत्ति भी पशु समान हो रही है; पशु सदा भोग पर लड़ा करते हैं चाहे दूसरे मरें या जीवें उन्हें तो अपने पेट भरने की धुन ही होती है। मानवता का नाश किया जा रहा है। भला मैं पूछता हूँ जिस बापू (महात्मा गाँधी) ने स्वराज प्राप्त किया था क्या वह हिंसक था, मांस खाता था, अण्डे खाता था, शराब पीता था, सिगरेट पीता था, जुआ खेलता था, सिनेमा देखता था, वह कोठियों-बंगलों में रहकर पुलिस की निगरानी-पहरा में रहता सोता था। ओ राज्याधिकारियों ! बापू-बापू की जय पुकारने से, उसकी समाधि पर फूल चढ़ाने से दूसरों को अहिंसा का उपदेश करते हुए स्वयं हिंसक बनने वालो ! क्या तुम संसार में जीवित रह सकोगे ? सारे भारत में हाहाकार मचा हुआ है, जरा अपनी संस्कृति पर विचार करो और वर्तमान जीवन का निरीक्षण करो। समय है संभलने का—मनुष्य बनो—तुम्हारा आहार-व्यवहार-विचार-आचार शुद्ध होगा तो प्रजा भी सदाचारी होगी जिससे संसार में सुख शान्ति का राज्य होगा तुम्हारा संसार में मान-नाम-शान-सम्मान होगा और विश्व का कल्याण होगा। ओ३म् शम्।

"सत्संग की महिमा"

ओ३म् को देवानाम वो सद्या वृणीते का आदित
आदिति ज्योतिर हो। (ऋ०४-२५-३)

भावार्थ--जो विद्वानों की संगति करते हैं वह सूर्यादि दृश्य सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर सकते हैं। कहते हैं स की साधारण बातें यहाँ उपदेश देती हैं, चित्त में पड़ी हुई उनके शब्दमन्त्र से छिद जाती हैं। कवि लिखता है—

यही तो खान हैं जिससे, रत्न अमूल्य मिलते हैं।
इसी पौधे में विद्या के, सुगन्धित फूल खिलते हैं॥
है मुक्ति जिसका फल वह,
पेड़ है सत पुरुषों की संगत।
सुहाती है जो मन को है,
इस वह पुष्प की रंगत॥

साध संगत हरिकीर्तन सर करमन के करमां
कहो नानक तिस भयो प्राप्त जिस पूर्व लिखे का लहना

अहा! आज कैसा सुन्दर स्थान--साथ नदी बहती जल की धीमी-धीमी गम्भीर गति की चाल को देखकर का तथा हृदय को लुभाती है, नदी के किनारे पर भिन्न-भिन्न प्रक के वृक्ष हैं साथ फूलों की भिन्न-भिन्न क्यारियाँ बनी हुई उसमें रंग बिरंगे फूल प्रभु की महिमा का गान कर रहे प्रमाणों शान्त-फूलों की सुगन्ध से मन और बुद्धि को शा कर देती है और चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न हो जाती है। हमा

पूर्वजों ने ऋषि-मुनियों ने तीर्थ स्थान ऐसे शान्त स्थानों पर बनाए थे कि वहाँ पर तपस्वी तथा अन्य भक्त जन भगवद् भक्ति का आनन्द लेते थे और जप-तप द्वारा आश्रमों के प्रमाणों को विभूषित कर देते थे, ताकि आश्रम के पवित्र प्रमाणों से दु:खी सन्तप्त आत्माएँ आकर शान्ति प्राप्त करें, परन्तु वर्तमान अवस्था विपरीत है जिससे वतमान तीर्थ स्थान प्राय: विषय विकारों का ग्रास बने हुए हैं अत: श्रद्धालु प्रेमी को वहाँ पर जाने से लाभ नहीं होता।

पाठकगण—प्रात: अमृत समय है दूर से देखने पर दृष्टि पड़ी ऐसा अनुभव हुआ कि गेरवे भेष में कोई सन्त महात्मा नदी किनारे बैठे हैं निकट पहुँचने पर देखा, वे सन्त महात्मा ध्यानावस्था में मग्न हैं थोड़े मिनटों के पश्चात् तीन-चार प्रेमी और भी घूमते हुए वहाँ पर पहुँच गए, सन्त महात्मा का मस्तक तेज और प्रकाश से युक्त है उनके शुद्ध पवित्र भोले-भाले हँस-मुख चेहरे को देखकर यही हृदय चाहता था कि इनके चरणों में ही बैठे रहें। १५-२० मिनट बीतने पर सन्त महात्मा ने मीठे २ स्वर से जो (रसना से भरपूर वाणी) दिल को लुभाने वाली आवाज से निम्न भजन गाना आरम्भ किया, हम भी मिलकर सन्त महात्मा के पीछे बैठ गये।

"भजन"

हे प्रभु तेरो निराली शान है,
आँख वालों को तेरी पहचान है।
अनगिनत पापी तरे तेरे फैज से,
तू दयाल महरबान भगवान है॥

मुझ अभागे के गुनाहों पर न जा,
ये तेरा बच्चा महज़ नादान है।
खेल में बचपन-ज़वानी विषयों में,
वृद्ध हुआ तृष्णा में ही गलतान है।
अपनी भक्ति का मुझे भी दान दे,
याचना यह सर्व शक्तिमान है॥

सन्त महात्मा ने आँख खोली, मुड़ कर पीछे हमें बैठा हुआ देखकर कहा—प्यारे ! सुनाओ, कैसे यहाँ पधारे हैं सभी प्रेमियों ने उठकर सन्त महात्मा के चरणों में नतमस्तक हो नमस्कार किया। प्राथना की—प्रेमी महाराज ! हम तीन चार साथी नित्य प्रति प्रातःकाल मिलकर इसी नदी के किनारे पर घूमने आते हैं। आज प्रभु देव की अपार कृपा से आप सन्त महात्मा के दर्शन प्राप्त हुए तथा आपकी अमृत वाणी द्वारा जो भजन के सुनने का रस आया है उसने हमारे हृदयों में प्रेम की तरंगें उत्पन्न कर गद-गद प्रसन्न कर दिया। हम सब आपके बहुत आभारी हैं ऐसे अवसर दुर्लभ, बड़े पुण्य कर्मों के पश्चात् प्रभु की कृपा से प्राप्त होते हैं। महाराज जो ! हम आपके अबोध बालक जिज्ञासू रूप आपसे कुछ ज्ञान प्राप्त करने को प्रार्थना करते हैं। कृपया अपनी अमृत वाणी द्वारा हमारे सन्तप्त हृदयों को शांत करें।

सन्त महात्मा—प्यारे ! आप जो कुछ मुझसे पूछना चाहते हैं आप बड़ी प्रसन्नता से पूछें यदि मुझे प्रभु देव ने सामर्थ्य शक्ति प्रदान की तो मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दे सकूँगा।

प्रश्न—

(१) सत्य का स्वरूप क्या है ?

(२) सत्य की आवश्यकता क्यों है ?

(३) सत्य की प्राप्ति का साधन क्या है ?

(४) सत्य का अधिकारी कौन है ?

उत्तर (१) सत्य का स्वरूप क्या है ?

यदि इस पर विचार किया जावे तो यही मालूम होता है कि सत्य का वास्तविक स्वरूप अनुभव करने के लिए असत्य का स्वरूप जान लेना परमावश्यक है। क्योंकि जिसे रात्रि का ज्ञान नहीं होता उसे भला दिन का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ? अत: असत्य का यथार्थ ज्ञान होने पर ही सत्य का अभिलाषी सत्य को ही जान सकेगा। जो असत्य को नहीं जान सकता, वह सत्य को भी नहीं जान सकता। संसार का सभ्य समाज गुणों को सत्य और दोषों को असत्य कहता है। क्योंकि दोषों पर गुण शासन करते हैं जैसे स्थिरता चंचलता पर, सदाचार दुराचार पर, योग भोग पर, प्रेम द्वेष पर, त्याग राग पर, संयम असंयम पर, आनन्द-दुःख पर, चेतन-जड़ पर और अहिंसा हिंसा पर। यदि यह विचार किया जावे कि गुण दोषों पर क्यों शासन करते हैं तो इसका उत्तर यही होगा कि गुण दोष की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है जिस प्रकार आँख का देखना यदि स्वाभाविक ही रहे, अर्थात् उस क्रिया में कर्ता किसी प्रकार का भाव न बनावे, तो फिर देखना कभी दोष नहीं कहा जाता।

वह दोष तब बनता है जब देखे हुये रूप से सुख प्राप्त

करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। यद्यपि सुख मिल नहीं सकता, परन्तु अविचार के कारण बेचारी आँख रूप में सुख की खोज करती है इसलिए अन्त में दुःखो होती है। अतः जिसस दुःख हो वही दोष है। इसलिये इन्द्रियों की स्थिरता हो जाने पर चचलता मिट जाती है। देखो, उस व्यक्ति को फिर संसार आदर दृष्टि से देखता है। जो इन्द्रियों का संयम नहीं कर सकता उसको संसार निरादर के भाव से देखता है। इसी नियम के अनुसार प्रत्येक गुण प्रत्येक दोष पर विजय प्राप्त कर लेता है। संसार को गुण युक्त जीवन की सर्वदा आवश्यकता रहतो है।

यदि संसार में गुणयुक्त जीवन व्यतीत करना हो तो गुणों का संग्रह करना परमावश्यक है। यद्यपि सत्य का वास्तविक स्वरूप गुण और दोष दोनों से परे है। क्योंकि गुणों के आ जाने पर भी कमी शेष रहती है। अतः जो सब प्रकार से पूर्ण है। अर्थात् जिसने किसी प्रकार का दोष नहीं, वही सत्य का स्वरूप है। सत्य के स्वरूप का कथन नहीं किया जा सकता। बल्कि उसका स्वयं अनुभव किया जा सकता है क्योंकि कथन करने वाले सभी साधन अपूर्ण हैं। अपूर्ण कभी पूर्ण कथन नहीं कर सकता। सत्य का स्वरूप व्यक्तित्व से अतीत है। सत्य अपने आपको प्रकाशित करता है। यदि कहा जाये कि गुणों के आ जाने पर कमी क्यों शेष रहती है तो इसका उत्तर यही होगा कि गुण भी एक प्रकार की प्रवृति है और गुणों का उपभोग करने के लिए दूसरे अनेक प्रकार की वस्तुओं को आवश्यकता होती है। यदि किसी में दोष न हो तो

फिर गुणों के अभिमानी का गौरव कुछ अर्थ नहीं रखता अर्थात् गुणों का जो कुछ मूल्य है वह दोषों की कृपा पर है। यह सब महानुभावों का अनुभव होगा कि कोई भी प्रकृति स्थिर अर्थात् नित्य नहीं है और नित्यता का न होना महान् दोष है। अतः गुणों के आ जाने पर भी कमी शेष रहती है। विचार दृष्टि से देखो कि यदि दया का गुण है तो उसकी पूर्ति के लिय दीन की आवश्यकता है। अर्थात् किसी भी गुण का स्वतन्त्र उपयोग नहीं किया जा सकता यद्यपि संसार में गुणों का उपभोग करने के लियें सदैव सामग्री उपस्थित रहती है, परन्तु जब संसार की कोई भी अवस्था किसी भी काल में स्थिर नहीं रहती तो फिर गुणों का उपभोग करने वाला किस प्रकार स्थिरता पा सकता है।

२. सत्य को आवश्यकता क्यों है ?

यदि इस पर बिचार किया जावे तो यही उत्तर होगा कि आवश्यकता उस वस्तु की होती है कि जिसके बिना किसी प्रकार न रह सकें। सभी महानुभाव स्थाई प्रसन्नता चाहते हैं। जब संसार की कोई अवस्था स्थाई प्रसन्नता नहीं दे पाती तो स्थाई प्रसन्नता का अभिलाषी संसार का त्याग करने के लिये विवश हो जाता है। यदि विचारशील पुरुष अपनी अभिलाषाओं की जाँच करे तो उसको यह भली प्रकार मालूम हो जावेगा कि अभिलाषाएँ केवल दो प्रकार की होती हैं—एक शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये और दूसरी अन्य सब प्रकार से पूर्ण होने के लिये। शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये कर्म तथा संसार की आवश्यकता होती है। संसार

तथा कर्म की सहायता से पूर्णता किसी प्रकार नहीं मिल सकती, क्योंकि संसार की कोई भी अवस्था पूर्ण नहीं है। जिस प्रकार गोल चक्कर में चलने वाला पथिक कभी मार्ग का अन्त नहीं पाता उसी प्रकार संसार की ओर जाने वाला कभी शान्ति तथा पूर्णता नहीं पाता। अतः स्थाई प्रसन्नता तथा पूर्णता के लिये सत्य की आवश्यकता होती है।

३. सत्य की प्राप्ति का साधन क्या है ?

इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि सदभाव पूर्वक सत्य की अभिलाषा ही सत्य का मार्ग है जिस प्रकार बड़ी मछली सब छोटी मछलियों को खाकर स्वयं मर जाती है, उसी प्रकार सत्य की अभिलाषा सभी अभिलाषाओं को मिटाकर अन्त में अपने आप मिट जाती है बस, उसी काल में सत्य का अनुभव हो जाता है। सत्य की प्राप्ति के लिये किसी संगठन की आवश्यकता नहीं, बल्कि सभी संगठन मिटाने होंगे। यदि कहा जावे कि सत्य की अभिलाषा किस प्रकार उत्पन्न होती है तो इसका उत्तर यही होगा कि आपने अपने को जिस कल्पना में बांध लिया है उसके अनुसार कर्म करो और अनावश्यक कार्यों का त्याग करो। आवश्यक कार्य पूरा होने पर सत्य की अभिलाषा स्वयं उत्पन्न हो जाती है। जो आवश्यक कार्य पूरा नहीं करते और अनावश्यक कार्यों को हृदय में इकट्ठा रखते हैं, उनको सत्य की अभिलाषा सदभाव पूर्वक उत्पन्न होने की फुरसत ही नहीं मिलती, वे बेचारे आगे पीछे का कार्य-चिन्तन करते रहते हैं। यदि यह कहा जावे कि आवश्यक कार्य क्या है तो इसका यही उत्तर होगा कि जिस कार्य के किये न रह

सको तथा जिसके करने का साधन प्राप्त हो तथा जिसके करने में किसी प्रकार का भय न हो वही आवश्यक कार्य है। कर्ता अपने कर्त्तव्य का पालन करने पर स्वयं उन्नति कर जाता है। अतः उन्नति के लिये निराश होना परम भूल है। जीवन की परिस्थिति चाहे जैसी क्यों न हो सत्य के अनुभव के लिये सभी मनुष्य समर्थ हैं। विचार दृष्टि से देखो, जिस प्रकार राजा का सम्बन्ध राज्य को सभी वस्तुओं से है, और उसी प्रकार सत्य का सम्बन्ध सभी से है। जो अपने बनावटी स्वभाव को मिटा देता है वह सत्य का अनुभव कर लेता है। और जो अपने स्वभाव को नहीं मिटाता या नहीं मिटा पाता वह सत्य को किसी प्रकार नहीं पा सकता। सत्य संसार की सहायता से नहीं मिल सकता। यदि गुणों का अभिमानी अपने गुणाभिमान को नहीं मिटा सकता तो वह सत्य को नहीं पा सकता। यदि महान पतित अपने पतित स्वभाव को मिटा देता है तो वह सत्य को पा लेता है। यद्यपि संसार की दृष्टि से गुणयुक्त जीवन सर्वदा पूज्यनीय है तथापि गुणों के अभिमान के कारण मनुष्य सत्य के विमुख रहता है। यह भली प्रकार स समझ लो कि जिसे संसार किसी प्रकार प्रसन्नता नहीं दे पाता, वह भी सत्य को पाकर अपार आनन्द पाता है। संसार का कोई व्यक्ति अपने से अधिक प्यारे को अपने समान नहीं बना सकता। जिस प्रकार कोई भी राजा किसी को राजा नहीं बना सकता, परन्तु सत्य का अभिलाषी सत्य को पाकर सत्य के साथ अभेद हो जाता है। व्यक्तित्व की गुलामी का त्याग ही सत्य का साधन है। यदि यह कहा जावे कि व्यक्तित्व की गुलामी का त्याग किस प्रकार

किया जावे तो इसका उत्तर यही होगा कि जो अपने व्यक्तित्व को मिटा देता है उसे फिर किसी भी व्यक्ति की गुलामी की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि व्यक्तित्व को ही व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यदि यह कहा जावे कि व्यक्तित्व किस प्रकार मिटाया जावे, तो इसका उत्तर यह होगा कि मिटायी वह वस्तु जाती है जो वास्तव में न हो। अर्थात् जिसका कोई स्वरूप न हो परन्तु अविचार के कारण प्रतीत होता हो।

देखो, आप अपने में जो व्यक्तित्व अनुभव करते हैं। क्या आपने उसे कभी देखा है ? तो आप यह कहने के लिये मजबूर हो जावेंगे कि हमने अपने व्यक्तित्व को सुनकर स्वीकार कर लिया है देखा नहीं। यदि यह कहो कि शरीर का व्यक्तित्व तो देखने में आता है तो इसका उत्तर यही होगा कि शरीर तो संसार से अभेद है उसमें आपका क्या ? विचार दृष्टि से देखो कि जिस शरीर को आप अपना समझते हैं वह वास्तव में सारे संसार में एक है, क्योंकि शरीर तथा संसार अंग तथा अंगी के समान है। अंग तथा अंगी के स्वरूप से एकता तथा माना हुआ भेद होता है। जिस प्रकार भारतवर्ष के अनेक प्रान्त भारतवर्ष से अभद हैं, उसी प्रकार शरीर संसार से अभेद है। अतः सुने हुए व्यक्तित्व को विचार रूपी अग्नि में जला दो, व्यक्तित्व के मिटते ही गुलामी का अन्त हो जावेगा और सत्य का मार्ग दिखाई देगा। सत्य का मार्ग इतना संकीर्ण है कि सत्य का अभिलाषी स्वयं अकेला ही जा सकता है। यहाँ तक कि मन बुद्धि आदि तक का साथ छोड़ना होगा क्योंकि संगठन का मिटाना ही सत्य का साधन है ?

सत्य का अधिकारी कौन है ?

जिसको प्रसन्नता देने के लिए संसार असमर्थ है अर्थात् जिसको भोग में रोग, हर्ष में शोक, संयोग में वियोग, सुख में दुःख, घर में बन, जीवन में मृत्यु का अनुभव होता है। वही सत्य का अधिकारी है। विचार दृष्टि से देखो, भोग करने से शक्ति का ह्रास होता है शक्तियों का ह्रास होने से रोग बिना बुलाए आ जाता ह। तब फिर भोग का कर्ता भोग करने के लिए असमर्थ हो जाता है ऐसी अवस्था आने पर भोग से जो हर्ष हुआ था उससे कहीं अधिक शोक आ जाता है। इसी दृष्टि से विचारशील हर्ष में शोक का अनुभव करते हैं।

चाहे कैसा ही सुन्दर भोग क्यों न हो तथा समाज के नियम के भी अनुकूल हो और भोगने की शक्ति भी हो, फिर भी शक्तिहीनता होनी अनिवार्य है। देखो, योग से शक्तियों का विकास होता है तथा भोग से विनाश होता है। योग और भोग मे केवल अन्तर यही है कि भोग के लिए शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों से सम्बन्ध होता है और योग के लिए विषयों को त्याग कर विषयातीत अनन्त सत्य से सम्बन्ध होता है। योग और ज्ञान में केवल यही भेद रहता है कि योगी योगाभिमान के कारण परम तत्व से अभेद नहीं हो पाता, इसलिये योगी में अनेक प्रकार की अद्‌भुत शक्तियाँ उद्भासित हो जाती हैं। भोग का अभाव होने पर योग अपने आप आ जाता है। योग स्वतन्त्र और भोग परतन्त्र है क्योंकि योग के लिये संसार की ओर नहीं देखना पड़ता। जिस प्रकार फलों की फसल खरीदने के लिए फलों का दाम केवल देते हैं और छाया बिना मूल्य

मिलती है उसी प्रकार ज्ञान होने पर योग स्वयं हो जाता है। यद्यपि ज्ञान निष्ठ पुरुष को योग की कोई आवश्यकता नहीं रहती तथापि असंगता के कारण योग अपने आप होता है। अतः जिस योग और भोग शान्ति नहीं दे पाते वही सत्य का अधिकारी है।

सत्य अहिंसा का ही रूपान्तर है। सत्य का व्यवहार केवल वाणी से ही नहीं होता है जैसा कि साधारण मनुष्य समझते हैं। ऊपर सत्य का वास्तविक स्वरूप दिखलाते हुए हमने बतलाया है कि कर्त्तव्य ही सत्य है इसलिए जो मनुष्य प्रत्येक प्राणी के प्रति जिस अवस्था और जिस काल में वह हो उसके प्रति अपना कर्त्तव्य यथार्थ रूप से समझता है और उसका यथार्थ रूप से पालन करता है। वही सत्यवृत्ति है। राजा हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहिताश की मृत्यु के शोक और स्त्री को घोर विपदा में अपने समक्ष खड़ी हुई देख, उसका मोह छोड़कर अपने स्वामी चंडाल के प्रति कर्त्तव्य को समझा और उसका पालन किया यह उनके सत्य की अन्तिम परीक्षा थी, जिसने उनका नाम सदा के लिये अमर कर दिया। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने कर्त्तव्य रूपी सत्यव्रत को पालन करने लगे तो संसार की अशान्ति स्वतः ही दूर हो सकती है। कई अविवेकी पुरुष दूसरों के हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाले वचन कहने में अपने को सत्यवादी होने का घमंड करते हैं। इस सम्बन्ध में हम केवल एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन कर देना पर्याप्त समझते हैं।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर मय दानव चित्रकार द्वारा स्फटिक की बनाई हुई युधिष्ठिर की आश्चर्य-जनक सभा में जल को थल और थल को जल, दीवार को द्वार

और द्वार को दीवार इत्यादि समझते हुए दुर्योधन को स्थान २ पर ठोकर खाते हुए देख, पांडवों का और द्रोपदी का उपहास करना तथा परिहास से यह शब्द कहना कि हे महाराज! हे धृतराष्ट्र (अन्ध) के पुत्र! देखो द्वार इधर है, जिनमें इन छिपे हुए अर्थों से उसके दिल को चोट पहुँचाने को भावना थी कि अन्धों के अन्धे ही पुत्र होते हैं। (महाभारत, सभापर्व अ० ३० श्लोक ३४) यह हिंसा रूपी असत्य था, जिसका फल महाभारत का युद्ध और उससे भारत का सर्वथा पतन हुआ। इसी प्रकार महाभारत कर्ण पर्व की एक घटना है।

एक समय कर्ण से परास्त होने के पश्चात् युधिष्ठिर ने अर्जुन को कर्ण वध के निमित्त उसके गाण्डीव धनुष को धिक्कार कर उत्तेजित किया कि हे अर्जुन! तेरे गाण्डीव धनुष बाहुवीर्य केसरी सत्भूत हनुमान से अंकित ध्वजा और अग्निदत्त रथ को बार २ धिक्कार है। तुम अपने गाण्डीव धनुष को जो तुमसे बलवान होने का दावा करे उस मित्र राजा को सौंप दो! अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो उसको धिक्कार कर कहेगा कि तुम अपने गाण्डीव धनुष को किसी अन्य को दे दो क्योंकि वह तुमसे बलवान है, उसको वह मार डालेगा। इसलिये उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए युधिष्ठिर का वध करने के लिए अपनी तलवार खींच ली। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सत्य का स्वरूप इस प्रकार से बताया कि हे अर्जुन! अज्ञानी केवल शब्द के स्थूल रूप को देखते हैं जबकि ज्ञानी उसके सूक्ष्म स्वरूप अर्थ को देखते हैं और उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं।

तेरी प्रतिज्ञा केवल गांडीव धनुष को धिक्कारने वाले का वध करने की थी और धिक्कारना अपमान के लिये द्वेषभाव से होता है। पर युधिष्ठिर ने गांडोव धनुष को प्रशंसा मान बढ़ाने के लिये प्रेम भाव से तुझे उत्तेजित किया है। कर्ण वध करने के लिये ही ये शब्द कहे हैं। इसलिये युधिष्ठिर के शब्दों के यह अर्थ नहीं लिये जा सकते और उसका मारना असत्य है। फिर भी यदि तू अज्ञानियों के सदृश रूढ़ोवाद में ही पड़ना चाहता है तो मारना केवल शस्त्र से और स्थूल शरीर का ही नहीं होता। युधिष्ठिर ज्ञानी है शरीर उसके लिए कपड़े के तुल्य है। उसके शरीर का पृथक होना उसके लिये मृत्यु नहीं। वाणी की चोट शस्त्र से अधिक तीक्ष्ण होती है। वही उसके लिये मृत्यु के सदृश है उसो से उसे मार।

शास्त्र के अनुसार निरपराधी जोवों की हिंसा को रोकना सबसे बड़ा सत्य है। कल्पना करो कि कुछ लोग डाकुओं से पोछा किये जाने पर तुम्हारे समक्ष किसी गुप्त स्थान में छिप जायें और उसके पश्चात डाकू आकर तुमसे पूछें कि वह आदमी कहाँ गए हैं? इस अवसर पर तुम्हारा कर्त्तव्य क्या होगा? ऐसी अवस्था में प्रत्येक मनुष्य का अपने अपने सामर्थ्य अनुसार हिंसकों की हिंसा हटाना और निरपराधी की सहायता करना परम कर्त्तव्य होगा अर्थात अहिंसा प्रतिष्ठित योगी अपने आत्मबल से हिंसकों की हिंसा वृति का दमन करे। यथा

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधां वैरत्यागः"

सम्मोहन और संकल्प शक्ति से युक्त मनोविज्ञान मानसिक प्रेरणा से हिंसकों को हिंसा वृत्ति को हटाए। वाक् शक्ति में निपुण वहागण हिंसकों को इस पाप से बचने का उपदेश दें। शस्त्र विद्या में कुशल योधागण अपने शारीरिक बल से हिंसकों की हिंसा हटाने का यत्न करें।

यदि तुममें कोई भी उपर्युक्त सामर्थ्य नहीं है और अपनी मृत्यु से भी डरते हो तो ऐसी परिस्थिति में मनु महाराज, योगीश्वर भगवान कृष्ण और नीति-शास्त्र इस प्रकार व्यवस्था देते हैं—

नापृष्ट. कस्यचिद्, ब्रूयात चान्यायेन पृच्छत: ।
जनन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोक आचरेत ।।
(मनु० २।११०)

जब तक हिंसक कोई प्रश्न न करे तब तक कछ न बोलना चाहिये और यदि हिंसक अन्याय से पूछे तो भी उत्तर नहीं देना चाहिये या जानते हुए भी पागल के समान कुछ हाँ-हूँ कर देना चाहिये।

अवश्यं कूजितव्ये ब शंकरेन्नप्यकूजित: ।
श्रेवस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ।।
(महाभारत कर्ण पर्व)

और यदि बोलना आवश्यक हो हो जाय या न बोलने से शक उत्पन्न हो तो वहाँ झूठ बोलने में ही श्रेय है। वह बिना विचारे (निसंदेह) सत्य ही है। तथा—

सत्यस्य वचनं श्रेय: सत्यादपि हितं वदेत ।
यद्भू तहितमत्यन्तमेतसत्यं मतं मम् ।।
(महाभारत शान्ति पर्व)

सत्य बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य से भी ऐसा बोलना अच्छा है जिससे सब प्राणियों का (वास्तविक) हित हो। क्योंकि जिससे सब प्राणियों का अत्यन्त हित होता है। वह हमारे मत में सत्य है। यहाँ इस बात को भली प्रकार से समझना चाहिए कि अहिंसा (वास्तबिक स्वरूप में) तीनों काल में सत्य है। अतः अहिंसा के लिए नियमित सीमा तक जो कुछ भी किया जावे और कहा जावे वह कहना और करना सत्य रूप ही है। क्योंकि जिस समय जिसके लिए जैसा करना चाहिए या कहना चाहिए वही कर्त्तव्य सत्य है। इसी बात को शास्त्रकारों ने यहाँ दर्शाया है। किन्तु उसको सांसारिक लाभ तथा संकट और आपत्ति के अवसर पर असत्य भाषण में समर्थक समझने की भूल कदापि न होनी चाहिए क्योंकि एसे अवसरों पर सत्य की परीक्षा होती है। सत्य महिमा इस प्रकार बतलाई है।

अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

हजार अश्वमेध और सत्य की तुलना की जाय तो सत्य ही अधिक होगा तथा च—

आत्महेतोः परार्थे वा नर्यहास्या श्रयात्तथा।
वे मृषा न वदन्तीह ते नरः स्वर्गगामिनः ॥

जो लोग इस जगत में स्वार्थ के लिये, परार्थ के लिए या हँसी में भी कभी झूठ नहीं बोलते उन्हीं को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उसी के स्पष्टीकरण के लिए महाभारत में बतलाया गया है कि धर्मावतार युधिष्ठिर महाराज ने संकट के समय

में एक बार ही। नरो वा कुञ्जरो वा, 'मनुष्य अथवा हाथी कहा था, जिसके फलस्वरूप उनका पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चलने वाला रथ साधारण रथों के समान भूमि पर चलने लगा। अर्जुन को शिखण्डी के सामने खड़ा करके भीष्म पितामह का तीरों द्वारा वध करने के फलस्वरूप अपने पुत्र बभ्रूवाहन से पराजित होना पड़ा। सत्य के सम्बन्ध में हर समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

आवश्यकतानुसार बोले, अनावश्यक बातें न करे; असत्य, कटु अथवा दूसरे को जिससे दुःख पहुँचे ऐसे शब्द न बोले; परस्पर द्वेष बढ़े ऐसी बातें न करे, चुगली न करे, किसी को ऐसा वचन न दे जिसे पूरा न कर सके, वचन जो दिया हो उसे पूरा करना चाहिए, समय का पूरा ध्यान रखना चाहिए, दूसरों से सम्बन्धित सारे कार्य ठीक समय पर हों।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्

जिस योगी की सत्य में दृढ़ स्थिति हो गई है उसकी वाणी से कभी असत्य नहीं निकलेगा क्योंकि वह यथार्थ ज्ञान का रखने वाला हो जाता है उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। जो क्रिया व वाणी करती है उसमें फल का आश्रय होता है। अर्थात जैसे किसी को यज्ञादिक क्रिया के करने में उसका फल होता है। इसी प्रकार योगी को केवल वचन से ही वह फल मिल जाता है यदि वह किसी से कहे कि तू धर्मात्मा अथवा सुखी होगा तो वह ऐसा हो जाता है।

सत्यनिष्ठ योगी के निरन्तर ऐसी भावना और धारणा रखने से उसके मुख से न केवल भूत और वर्तमान के सम्बन्ध

में किन्तु भविष्य में होने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में भी कोई असत्य वचन न निकलने पाए। सत्य की प्रबलता से उसका अन्त:करण इतना स्वच्छ और निर्मल हो जाता है कि उसकी वाणी से वही बात निकलती है जो क्रिया रूप में होने वाली होती है।

सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥
खुल गया जिसपे राज़ पिन्हानी।
हेच समझें वह एश सुलतानी॥
सत सदा तुम राखियो धन जाए तो जाए।
सत की बाँधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आए॥

प्रेमी——महाराज ! यम–नियम में पहले अहिंसा को रखा हुआ है पश्चात् सत्य को। कृपया कुछ अहिंसा के सम्बन्ध में प्रकाश डालें।

सन्तमहात्मा— प्यारे !

सत्य, अहिंसा और सन्तोष यह धर्म के तीन भाग हैं। सत्य आदि, अहिंसा अन्त और सन्तोष इस धर्म का मध्य है। जिस प्रकार से किसी भी वस्तु का आदि, अन्त और मध्य एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार से सत्य, अहिंसा और सन्तोष एक दूसरे से भिन्न अथवा अलग नहीं किये जा सकते, इन तीनों के समन्वय से धर्म अपने व्यक्तित्व को प्राप्त होता है। हिंसा के तीन भाग हैं मानसिक, वाचिक और क्रियात्मक। जब हम किसी प्राणी के प्रति दुर्भावना का आह्वान करते हैं तो हम मानसिक हिंसा का अधर्म करते हैं।

जब हम दुर्वचन अथवा कठोर वचन बोलकर किसी प्राणी का दिल दुखाते हैं तो हम वाचिक हिंसा का अधर्म बरतते हैं और जब हम कोई ऐसा कार्य करते हैं जिससे कि किसी प्राणी को दु:ख अथवा वेदना प्रतीत हो, तो उस समय हम क्रियात्मक हिंसा अर्थात् अधर्म बरतते हैं।

हिंसा का सबसे निकृष्ट रूप है प्राण घात। जब हम कोई ऐसा कर्म करते हैं जिससे कि किसी प्राणी के प्राणों की हत्या होती है, तब हम सबसे निकृष्ट पाप अथवा अधर्म के भागी होते हैं। जिह्वा को किसी प्राणी के मांस से क्षण भर के लिए आनन्दित करने के लिए प्राणी का घात करना यह अत्यन्त निकृष्ट हिंसा है, मांसाहारी का यह कहना कि हम तो बकरे को मारते नहीं, फिर हमें पाप काहे का; परन्तु उन्हें याद रखना चाहिए; कि कसाई अपनी भुजा के जिस बल और प्ररणा स मूक प्राणी का वध करता है, वह प्रेरणा उसे मांसा-हारी लोगों से सतत प्राप्त होती है। कसाई को केवल प्रथम प्राणघात का ही पाप है, क्योंकि उसी एक समय ही वह अपनी मानवता से पशुता की ओर खड़े होकर प्रत्यक्ष संघर्ष करता है, कसाई तो अपनी मानवता को एक ही बार मारता है, परन्तु मांसाहारी व्यक्ति प्रत्येक दिन (जब कभी भी अपनी जिह्वा के सन्तुष्टार्थ मांस खाता है) अपनी मानवता का घात करता है, इस कारण से कसाई को प्रथम प्राणाघात का ही पाप है, उसके पश्चात् वह जितने भी प्राणियों का घात करता है उसका पाप उन मांसाहारियों को है, जो कि कसाई को जीवन प्रलोभन दे प्राणियों की हत्या करने पर बाध्य करते

हैं। अतः मांसाहारी व्यक्ति को हम कभी भी धर्मात्मा नहीं कह सकते कारण यह कि जिस व्यक्ति ने एक प्राणी की हत्या की है वह सभी प्राणियों की हत्या कर सकता है, जिसने एक प्राणी का मांस खाया है वह अवसर प्राप्त होने पर सभी प्राणियों का मांस खाएगा—ऐसा समझना चाहिए। पतित मनुष्य केवल प्राणियों ही का मांस नहीं खाते, अपितु वे मनुष्यों का मांस भी खाते हैं। कैसे ! जब हम किसी गरीब को किसी प्रकार से फँसाकर अनुचित तौर से उसे रुपए देने के लिए बाध्य करते हैं तो उस समय हम उसी व्यक्ति का मांस (रक्त) खाते हैं। उन्हीं पैसों से वह गरीब व्यक्ति अन्न लाकर अपने शरीर का पालन-पोषण करता है, परन्तु किसी प्रकार तंग करके जब हम वह पैसे उससे छीन लेते हैं, तो उस हानि की पूर्ति के लिए गरीब अपने आहार में कमी करता है। उस आहार की कमी से उसकी शारीरिक वृद्धि घटती है। उसके शरीर का वह घटा हुआ भाग हमारे शरीर में उसके पैसों से प्राप्त वस्तुओं के सेवन से वृद्धि का प्राप्त हुआ भाग है। अर्थात् हमारे शरीर में वह मांस उस गरीब का मांस है यह एक मनुष्य के मांस आहार का उदाहरण। हे मानव, एक प्राणी की हत्या कर दूसरे प्राणी की रक्षा में क्या अर्थ है। अपनी पीठ के पीछे प्राणियों को मार सम्मुख के प्राणियों का पोषण कर तुम किसार्थ की सिद्धि को ढूँढते हो, मनुष्य आज विनाश के भय से इस कारण त्रस्त है कि वह अहिंसा का भाव त्याग कर द्विपद पशु बन गया है और भय स्वभाव है पशुता का, क्योंकि आधीनता और भय एक ही वस्तु के दो भेद हैं जहाँ आधीनता

है वहाँ भय है और जहाँ भय है वहाँ आधीनता है। हम आज के मानव अपने से अधिक बलशाली से भयभीत इस कारण से हैं कि हमसे न्यून बलशाली हमसे भयभीत हैं—आज के मानव एक-दूसरे पर विश्वास नहीं रख सकते, क्योंकि वे मांसाहारी हैं, मानव भाव को तिलाञ्जलि देकर पशु भाव को प्राप्त होकर मनुष्य को सदैव भय से त्रस्त रहना उपयुक्त ही है, क्योंकि भय पशु धर्म है।

हे अल्प बुद्धि मानव! स्वास्थ्य रक्षा के बहाने प्राणी हत्या कर क्यों तू पशुता का अभिवादन करता है? किसी प्राणी की हत्या से कभी मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। अपने कटे हुए गले का रक्तपान कर कौन व्यक्ति शरीर-बुद्धि को प्राप्त कर सकता है. मानव की शरीर रचना इस प्रकार की नहीं हो सकती कि प्राणियों के मांस से जो बुद्धि को प्राप्त हो, जो वस्तु हमारी आत्मा के लिए अवश्य ही हानिकारक हो, वह अवश्य ही हमारे शरीर के लिए भी विष समान होगी क्योंकि शरीर और आत्मा के संयोग का नाम ही जीवन है। प्राणी वध कर मांसाहार मनुष्यात्मा का घातक है और जो आत्मा के लिए घातक है वह अवश्य ही शरीर का पोषक कदापि नहीं हो सकता। जो मनुष्य मांस खाकर भी दीर्घायु व्यतीत करते हैं अथवा बुद्धिमत्ता के कार्य करते हैं वह मांसाहारी न होने पर अधिक दीर्घायु को प्राप्त होते, एवं बुद्धिमत्ता के कार्य करते। हिंसा मानव के लिए कदापि किसी प्रकार के कल्याण की हेतु नहीं हो सकती। जब कोई व्यक्ति

अत्यन्त बीमार हो जाता है और डाक्टरों के अनुरोध करने पर

भी यह विचार करके किसी प्राणी के प्राण लेकर अपने प्राण धारण नहीं करने चाहिए, मांस खाने से पूर्णतया इन्कार करता है तो उस व्यक्ति का उस रोग के कारण प्रत्येक दुःखी क्षण-तप, रूप बन जाता है, जन्म और मरण प्रारब्ध के आधीन है, अतः उसका अन्तिम समय ही आ गया हो तो मांस खाने से कभी नहीं बच सकता। परन्तु डाक्टरों द्वारा जीवन प्रलोभन देकर भी यदि वह मांस न खाए तो उसकी मृत्यु दीन और दुःखी मृत्यु न रह कर उस अमर माधुर्यवान् देश के द्वार में परिणत होती है यदि उस व्यक्ति का प्रारब्ध अभी शेष हो तो मांस न खाने पर भी वह समय पर स्वस्थ अवश्य हो होगा।

पशुओं में जीवन स्वतः प्राप्त न होने के कारण ही एक दूसरे का आहार कर सकता अथवा अभिन्नता का अभिप्राय व्यक्त करता है। पशुओं में जीवन स्वतः को प्राप्त न होने के कारण एकता के भाव को विकास द्वारा नहीं, अपितु ह्रास द्वारा प्राप्त होता है, इसी कारण से मांसाहारी पशुओं के शरीर की बनावट भी इस प्रकार बनाई गई है जिससे वह प्राणियों को मारकर खा सकें। उदाहरणतः सभी मांसाहारी पशुओं के लम्बे नोकदार दाँत होते हैं परन्तु मनुष्य के दाँत इस प्रकार के नहीं होते। इस प्रकृति का अभिप्राय यह है, कि मनुष्य के लिए आहार मांस कदापि नहीं, हिंसक व्यक्ति निदयी होता है वह दया के गुण से रहित हो जाता है। वेद भगवान मांसाहारी के लिए क्या दण्ड देने का आदेश राजा को करता है।

ओ३म् उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जि चारया वृषन । य. स्त्रोणां जोव भोजनः ।

यजु० २३—२१

पदार्थ—हे (वृषन्) शक्तिमन् (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जोव भोजनः) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्तमान हो उस पुरुष और उस स्त्री को बाँधकर (उत्सक्थ्याः) ऊपर को पग और नोचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य (अव, गुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अंजिम्) अपने प्रकट न्याय को (संचारय) भलीभाँति चलाओ ।

एक व्यक्ति नानबाई की दुकान पर भोजन करने गया, नानबाई ने भोजन की थाली पड़ोस दी । भोजन में माँस दिया, व्यक्ति खाने लगा, नानबाई के सेवक बर्तन साफ धोकर जहाँ पर जूतियाँ रखी थीं उनके साथ रख रहा था तो मांसाहारी ने सेवक से कहा—ओ मूरख ! बर्तन साफ कर जूतों के साथ रख रहा है बर्तन भृष्ट कर रहा है । नानबाई ने कहा—लाला जी ! जरा बुद्धि से विचार कर बोलो जूतो का चमड़ा तो बाहर का है तुझे इससे घृणा आ रही है पर तू क्या खा रहा है क्या वह मांस इन जूतियों से पवित्र है तेरे अन्दर के अन्तःकरण को अपवित्र नहीं कर रहा ? अब बताओ मूरख मैं हूँ या आप ? और एक बच्चा माँ की गोद में है उसे माता प्रेम-प्यार करती और मुँह से चूमती है, पर जब उस बालक की मृत्यु हो जाती है बता उस समय उस बालक से कोई प्यार करता है किन्तु जो भी उसे

छूता है वह अपवित्र हो जाता है वह वस्त्रों सहित धोता और नहाता है और उसको शमशान में ले जाकर जलाते हैं जो नगर से दूर होता है ताकि घर में बदबू न हो। यह बालक तो अपने जिगर का टुकड़ा जिसको सर्व परिवार प्यार करता था, पर तू उन पशु का मांस घर में बनाकर घर को शमशान, पेट को कबर बनाता है क्या ऐसे अहिंसक आहार से तेरा मन तेरी बुद्धि शुद्ध-पवित्र होगी ? कुत्ते बिल्ली जैसा आहार करके क्या मनुष्य जन्म फिर पायेगा।

भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व मांस इत्यादि का लोग आहार नहीं करते थे। दया के गुणों से भरपूर थे। परन्तु जब से स्वतन्त्रता प्राप्त की है घर घर में मांस अण्डा, मछली का आहार हो गया है। दया, प्रेम, सहानुभूति का दिवाला है। न सोने का समय, न जागने का समय, भोग-विलास को अपना गुरु समझ रखा है, परिणाम मनुष्य को मनुष्य अब खा रहा है। जैसे कुत्ते रोटी के टुकड़े पर लड़ते हैं वैसे राजाधिकारी आपस में लड़ते हैं।

भला जरा बुद्धि से विचार करो, एक छोटा बालक मिट्टी के खिलोने से खेल रहा है दूसरा बालक आकर उसके खिलोने को तोड़ देता है तो खिलोने वाला बालक रोने लगता है बालक को रोता देखकर माता पिता तत्काल पहुँच जाते हैं बालक के रोने का कारण मालूम कर बालक तथा बालक के माता पिता तक में आपस में लड़ाई झगड़ा हो जाता है। अब सोचो यह तो मिट्टी का खिलोना उसे टूटा देखकर दोनों के माता पिता लड़ने लग गए, भला जिस परम पिता परमात्मा ने एक खिलोने

अपनी महाशक्ति से बनाये हैं, तुम उनके खिलोनों को तोड़-फोड़ रहे हो, क्या वह कारीगर बनाने वाला निर्बल है वह तुम्हें नजर नहीं पड़ता है, क्या उसको दुःख न होगा। मूरख! जिस चीज को तू बना नहीं सकता उसे क्यों बिगाड़ता है और उस न्यायकारी सर्वशक्तिमान को शक्ति तुझे नजर नहीं आती। कहावत है जैसा आहार, वैसा व्यवहार और जैसा आहार वैसा विचार, वैसा आचार बनता है। जिन महान पवित्र आत्माओं का संसार में नाम जीवित है, जिनके चरित्र घर-घर में रखे जाते हैं और उनके जीवन को देखकर ही मनुष्य देवता बन जाता है। क्या वह मांसाहारी अहिंसक आत्मा थे? ओ मेरे भोले भाइयो! कुछ अपने पर तरस करो यदि जीवन को सफल बनाना चाहते हो तो उन महान पवित्र आत्माओं के जीवन को सम्मुख रखते हुये वैसे आचरण करते हुये इस अमूल्य होरा मनुष्य जीवन को सफल करो—

नोकी की ताक़त नहीं तो बदी से परहेज़ कर,
अपने ऊपर ज़ुल्म करने से सदा ईश्वर से डर।
बुराई या भलाई जो हैं करते।
सदा उसका है वैसा फल वह भरते॥

स्वार्थ से काम सारे दुनिया में हैं बिगड़ जाते,
गुप्त कहाँ वह भेद जिसे सभा में हैं सुनाते।
भूल कर हमने ख़ुद को कैसा अन्धा किया,
अपने घर के बीच में आप ही को गुम किया।
नज़दीक से नज़दीक है और दूर से है दूर तर।
चश्मे दिल को खोलकर देखो वह आता है नज़र॥

बेज़बाँ को फरियाद

हर दर्दमन्द के दिल को रोना मेरा रुला दे ।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगा दे ।।

ऐ मनुष्य तू कुछ अपने को पहचान कि मैं कौन हूँ ओ भोले ! तेरा नाम इन्सान भी है अर्थात तुझमें उन्स-मुहब्बत-दया-प्राणीमात्र से प्रेम-प्यार करना, यह गुण स्वाभाविक हैं पर तू निर्दयता के अवगुण को धारण कर अपने को क्यों पतित कर रहा है । तू निर्दोष, बे जवान, बेकस गरीब पशु पक्षियों पर नाना प्रकार के जुल्म अत्याचार करता है उन विचारों की समर्थ शक्ति से बढ़ चढ़ कर उनसे काम लेता है और उन्हें तरह तरह के दुःख देता है । स्वतन्त्र आजाद परिन्दे को लोहे के पिंजरों में कैद करता है और उनके वच्चों को मारकर खाता है । चमड़े की वस्तुओं की खातिर बेगुनाहों की खालें उतारता है और अपने घर को शमशान, पेट को कब्रिस्तान (माँस खाने के लिए) लाखों बेज़वान पशु पक्षियों के गले काटता है कवि लिखता है—

न कर ज़ुलम ज़ालिम इस लुत्फ औ कर्म के बदले ।
एक दिन तुझे मिलेंगे इस ज़ुलमों सितम के बदले ।।

ऐ इन्सान ! प्रायश्चित कर एसे भयानक भयानक कर्मों से और परमात्मा की प्रजा पर दया कर । याद रख, मज़लूमों की आह फल लाए बिना नहीं रहेगी , कवि लिखता है—

बतरस अज़ आहे मजलूमा कि हंगामे दुआ करदन ।
अजाबत अज़ दरे हक बहर इस्तकबाल में आयद ।।

अर्थात ईश्वर, दुखियों मज़लूमों की आह को खूब सुनता है। बेरहम इन्सान! तू सबसे बड़ा मुजरिम है उसे हर एक बुरे कर्मों का फल अवश्य मिलता है यहाँ तक कि उसे जड़ से उखाड़कर सदा को नींद सुला देता है अर्थात न होगा बाँस, न बजेगी बांसरी की तरह परमात्मा कर देता है। गुरू नानक देव जी महाराज ने कहा है—

जो बीजे सो उगेसी, क्यूँ न होवे हान।
समय पाए फल देत है नानक निश्चय जान॥

अर्थात जैसा करोगे, वैसा भरोगे। जो बीजोगे, वही काटोगे। ऐ इन्सान! तू कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है जैसा चाहे कर. पर अपने किये कर्मों का जिम्मेदार है यह सब संकट विपत्तियाँ जो तू भुगत रहा है तेरे किए कर्मों की ही शामत है, हृदय में यह ठान ले, कि बे कसूर, बेकस, व जुबान गरीब मसकीन पशुओं पक्षियों पर जो तू जुलमो-सितम करता है यह उसी की सजा है कि आज तू दुःख पर दुःख पा रहा है, अपने हृदय में तू निश्चय विश्वास रख कि पशु-पक्षियों का रक्त बहाना आपस में रक्त बहाना सिखाता है, यही कारण है कि आज भाई भाई के रक्त का प्यासा बन गया है और मनुष्य देवता से राक्षस बनकर सुख-शान्ति का सत्यानाश कर रहा है। माँस खाने से मनुष्य के अन्दर तमोगुण प्रधान हो जाता है जो सर्वदुःखों का कारण है। संसार के अन्दर ज्यों-ज्यों हिंसक लोगों की संख्या बढ़ रही है त्यों-त्यों संसार दुःखों, संकटों का घर बन रहा है और मनुष्य जीवन नर्क जीवन का रूप बन रहा है। हर एक के हृदय में वैर, विरुद्ध, कीन, ईर्ष्या,

द्वेष भरा हुआ है। दया, प्रेम, सहानुभूति एकता के स्थान पर रक्तपात, बेरहमी और बदी सारे संसार में फैली हुई है आज भारतवर्ष ईर्ष्या द्वेष की अग्नि का ग्रास बन रहा है। मुसलमान हिन्दू का, हिन्दू मुसलमानों का ऐसी हीन अवस्था में बात का बतंगड़ बन जाता है। ऐसे ही जैसे ऊँघने को ठेलने का बहाना। मामूली-मामूली सी बातों पर दंगा फसाद हो जाता है और यही झगड़ा युद्ध का रूप धारण कर लेता है फिर क्या होता है रक्त की होली खेली जाती है, सभ्य-माननीय व्यक्तियों की पगड़ियाँ उछाली जाती हैं, लाखों निर्दोष मारे जाते हैं, लाखों देवियाँ विधवा हो जाती हैं और फिर उन पर अत्याचार किया जाता है, पूजा-पाठ के स्थानों को गिराया जाता है, करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति को अग्नि की भेंट कर दिया जाता है, गुण्डे खूब अन्धेर मचाते हैं, आते जाते यात्रियों को छुरे घोंप दिये जाते हैं। परमात्मा ही हम सबको सुमति प्रदान करें ताकि हम मनुष्य-इन्सान बनना सीखें, अहिंसक-दया के गुणों को धारण कर आचरण कर प्राणीमात्र से प्रेम-प्यार करना सीखें। गुरु नानक लिखता है—

काटे गला जो और का अपना भी ले कटाए।
धीरे धीरे नानका बदला कहीं न जाए॥

जब मनुष्य उसकी शक्ति का भान हृदय से कर लेता है तो फिर ज़ार-ज़ार रोता है, पश्चाताप करता है तो परमात्मा उसके सच्चे हृदय से पश्चाताप को देखकर शुद्ध पवित्र कर देता है फिर भगवान से प्रार्थना करता है—

हो गया आनन्द दुनियाँ को रिझाकर क्या करूँ।
दिल प्रकाशित हो तो, दीपक राग गाकर क्या करूँ॥
जल गया अज्ञान का, वह जाल अग्नि ज्ञान से।
खुद बुझी जाती है, अब उसको बुझाकर क्या करूँ॥

"यह दुनिया जाएफ़ना है"

यह दुनिया जाये फ़ानो है, घड़ी पल का नज़ारा है,
निकाला जिसने सर इसजा, गया आख़िर वह मारा है,
यही आवाज़ आती है, न कर अब देर चल बन्दे,
नहीं छोड़ूंगा मैं तुझको, क्यों मुझको बिसारा है।
नहीं उम्मेद रहने की, किसी को इस जगह हरदम,
हमेशा मौत का सर पर, पड़ा बजता नकारा है।
अव्वल कितने जहाँ अन्दर, हुए मुफ़लिस ओ अहिले ज़र,
पकड़ कर मौत ज़ालिम ने, सभी को मार डाला है।
कहाँ रावण कहाँ दशरथ, कहाँ कौरव कहाँ पांडू,
कहाँ अकबर सिकन्दर जो, कहाँ जमशीद दारा है।
जो पुर मग़रूर फिरते हैं, हुकमरानी औ शाही में,
दिखाया मौत जब चेहरा, तो भूला हुक्म सारा है।
जभी गरदन से आ पकड़े, न काम आये जूरे हिकमत,
न भाई खेश यारूँ की, चले उस वक्त चारा है।
बड़ा छोटा न कुछ देखे, यह खाना है या न खाना,
मिसाले शेर जो पाया, उसी को खा गुज़ारा है।
कई हबाब होकर गुम हुए, दरयाए दुनिया में,
गया जो एक दफा फिर, वह न होता आशकारा है।
असल में देखता हूँ मैं, कहीं आना न जाना है,
हबाबू की तरह देखा, धर्म दासा पसारा है।

"भारतीय संस्कृति"

स्त्री कर्त्तव्य-नारी जीवन

ओ३म् एषुधा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरेषु । ये नो राधांस्य ह्रया मघावानो अरासत सुजाते अश्व सुनृते ।। ऋ० ५—७९—६ ।

भावार्थ—वही प्रशंस्ति स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करती है ।

विद्या, बल, धन, रूप, यश, कुल, सतबन्तामान;
सभी सुलभ संसार में, दुर्लभ आत्म ज्ञान ।

अर्थात्—विद्या प्राप्त हो सकती है, शक्ति भी उत्पन्न की जा सकती है, कमाने वाले धन भी कमा लेते हैं, सुन्दरता भी, साथ शुभ कर्मों से यश भी प्राप्त हो सकता है । उत्तम कुल में जन्म भी प्राप्त किया जा सकता है सच्चा व्यवहार भी किया जा सकता है और मान भी मिल सकता है । इनके प्राप्त करने को साधारण सा पुरुषार्थ करना पड़ता है थोड़े से और उचित साधनों से यह सभी प्राप्त हो जाते हैं । इनका मिलना आसान है परन्तु आत्म ज्ञान जो जीवन का वास्तविक उद्देश्य है बहुत कठिनता से प्राप्त होता है, आत्मज्ञानी को दृष्टि में उपरोक्त बाते तुच्छ ही हैं जो सुख-शान्ति आत्म ज्ञान से मिलती है । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

मातृमान, पितृमान आचार्यवान पुरूषोवेद ।

अर्थात्—सबसे पहला गुरू है माता ! माता वह जो मति को बनाने वाली हो, इसी मती के द्वारा सति हो जाती थीं । इससे धर्म कतव्य का ज्ञान प्राप्त होता है । इस ज्ञान के द्वारा अपने चरित्र का निर्माण होता था । वास्तव में सदाचार ही आत्म-ज्ञान है । मैं एक ऐतिहासिक घटना आपके सम्मुख रखता हूँ—

'आत्म ज्ञान-सदाचार'

बंगाल में एक ठाकुर देवीसिंह मुर्शिदाबाद में अफसर माल लगे हुए थे, वहाँ पर जगन्नाथ भट्टाचार्य की भूमि थी । उसकी धर्म पत्नी जिसका नाम 'कमला' था, वह अति सुन्दर, रूपवती थी । उसके तीन छोटे बालक थ उनके नाम रामनाथ, कृष्णनाथ विश्वनाथ थे । ठाकुर देवी सिंह ने किसी तरह कमला को देख लिया, उसके विचारों में अपवित्रता आ गई और यही दिल में ठानी कि किसी न किसी तरह कमला को अपने वश में कर लूँ तथा अपने मन में लगातार उसको वश में करने के मनसूबे सोचता रहा । उन्हीं दिनों बंगाल में ईस्टइण्डिया कम्पनी का राज्य था । वह उचित तथा अनुचित प्रकार से वहाँ पर अपना शासन जमाना चाहती थी, इसलिये उसने अपने अफसरों को काफी ढोल दे रखी थी । अफसर लोग प्रजा पर अनुचित शासन और अत्याचार करते थे । यदि उन अफसरों के अनुचित और अत्याचारी व्यवहार के प्रति कम्पनी के सर्वाधिकारियों से शिकायत की जाती तो उसे नहीं सुना जाता था, कारण यह था

कि कम्पनी का यह विश्वास था कि जब तक हमारे आधीन शासकों का प्रजा पर शासन न होगा तब तक हमारा राज्य स्थिर नहीं हो सकता। चुनांचे ऐसी अवस्था में लाभ उठाने के लिए ठाकुर देवीसिंह ने कमला को अपने पास बुलाने का ढंग सोचा। कमला के पति जगन्नाथ को सरकारी लगान भूमि का रुपया देना कुछ शेष था उसे बुलवाया गया, उसे लगाने का रुपया तत्काल सरकारी कोष में जमा कराने का आदेश किया, परन्तु ठाकुर ने रुपया पास न होने के कारण कुछ अवकाश माँगा। देवीसिंह ने अवकाश न देकर उसे जेल की कोठरी में भज दिया। फिर कमला को बुलाकर उसे उसके पति को जल में भेज देने का समाचार सुनाया और उससे यूँ वार्तालाप करनी आरम्भ की।

ठाकुर—तुम जानती हो कि तुम्हारे पति के लिए सरकारी लगान का रुपया अदा करना है और तुम यह भी जानती हो कि उसके पास रुपय नहीं हैं। सरकार का आदेश है रुपये तत्काल सरकारी कोष में जमा करो।

कमला—हाँ सरकार ! मैं यह सब कुछ जानती हूँ, आप कृपा कर हमें अवकाश दें ताकि मेरे पति कुछ काम-धन्धा करके पैसा कमाएंगे और सरकारी रकम अदा कर देंगे। बच्चे मेरे छोटे हैं।

ठाकुर—-अवकाश मिलना कठिन है कम्पनी का बड़ा कड़ा आर्डर है और उसे मैं टाल नहीं सकता, हां यदि तुम स्वयं अदायगी का प्रबन्ध कर लो, तो तुम्हारा पति जेल से मुक्त हो सकता है।

कमला—यदि मेरे पास रुपया होता, तो मैं अपने पूज्य

पतिदेव को पल भर के लिए जेल में न रहने देती, परन्तु शोक है कि मेरे पास कोई आभूषण नहीं है वरना उसे बेच कर सरकारी रकम तत्काल दे देती, अब मैं नहीं समझ पाती कि मैं किस प्रकार सरकारी रकम अदा कर सकती हूँ। आप हमें अवकाश अवश्य देने की कृपा कीजिए।

ठाकुर—यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास न रुपये हैं न आभूषण इत्यादि परन्तु यदि तुम चाहो तो तुम अपने पति को जेल से मुक्त करा सकती हो।

कमला—सरकार! यह आप क्या पहेली डाल रहे हैं, रुपये की अदायगी आप शीघ्र माँगते हैं रुपया तथा और कोई साधन मेरे पास नहीं है जो रुपया अदा कर सकूँ। ऐसी संकटावस्था में मैं अब क्या कर सकती हूँ?

ठाकुर—तुम जान बूझकर बात को टाल रही हो, तुम जानती हुई भी अनजान बन रही हो।

कमला—अपने स्वभाव से नम्र होकर बोली कि मैं धर्म की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं आपके भाव को नहीं समझ रही हूँ। यदि मेरा पति जेल से मुक्त हो सके तो इससे बढ़कर मेरे लिये क्या प्रसन्नता होगी, मेरे प्राण तो मेरे पति देव ही हैं। जब से आपने उन्हें जेल में डाला है मानो, मेरे अन्दर जान नहीं है, यदि मैं अपने पति को इस जेल संकट से मुक्त करा सकती हूँ तो इससे बढ़ कर मेरे लिए क्या खुश-किस्मती होगी। आप साधन बताएँ किस तरह हो सकता है?

ठाकुर—मुस्कराते हुए, आँख ऊपर-नीचे करते हुए—तुम समझ तो गई हो, परन्तु मेरे मुख से बात कहलवाना

चाहती हो। अच्छा, तो मैं कह ही देता हूँ, तुम आज रात को मेरे मकान पर आ जाओ और रात को मेरे पास ठहरो। बोलो, क्या स्वीकार है ? यदि ऐसा कर लो तो मैं कल प्रातः तुम्हारे पति को जेल से मुक्त कर दूँगा।

कमला——शब्द सुनते ही मुख अग्नि की भाँति लाल हो गया, परन्तु अपने को संभाल कर बोली, सरकार ! अफसर तो प्रजा के माता-पिता होते हैं और मैं आपको माँ-बाप समझ कर आपके कोर्ट में आई हूँ, अफसर तो प्रजा की बहू-बेटियों के धर्म की रक्षा किया करते हैं, आपने यह क्या बात कह दी या मैं उसके समझने में भूल कर रही हूँ शायद आपका भाव कुछ और हो ?

ठाकुर——नहीं कमला, भाव तो तू ठीक समझ गई, यह तुम्हारा कहना ठीक है कि राज्याधिकारियों का कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना है, परन्तु प्रजा का भी तो कर्त्तव्य है कि राज्याधिकारियों की प्रसन्नता को प्राप्त करना और फिर जहाँ तुम मुझे प्रसन्न करोगी, वहाँ तुम्हारा काम भी बन जावेगा।

कमला——क्या आप अपने शब्दों को फिर भली प्रकार विचार कर लौटा सकते हैं ? आपने एक हिन्दू देवी का अपमान किया है इसलिए आपको उचित है कि आप प्रायश्चित करते हुए अपने शब्दों को वापिस लें।

ठाकुर——मैंने आपका अपमान नहीं किया, किन्तु तुम्हारे मान के बढ़ाने का विचार किया है। तुम्हें मालूम नहीं, हमारे पास सैकड़ों देवियाँ आने को तैयार हैं, परन्तु तुम अपने को भाग्यशालिनी समझो कि मैं तुम्हें स्वयं निमन्त्रण कर रहा हूँ,

इससे तुम्हारे कुल का मान बढ़ जावेगा और तुम्हें कई प्रकार के लाभ पहुँचाऊँगा। अतः तुम मेरी बात को हृदय से स्वीकार कर लो।

कमला---क्रोध से आँखें लाल हो गईं, कहा—मैं एक बार फिर आपसे निवेदन करती हूँ कि आप इस गन्दे विचार को दिल से निकाल दो। आप ठाकुर हैं ऊँचे कुल से सम्बन्ध रखते हैं इसलिए अपने कुल की लाज तथा अपने अधिकार का विचार करते हुए अपनी बुरी भावना को नष्ट कर दो।

ठाकुर—आँखें फाड़कर—तुम्हें हमारे अधिकार का ज्ञान नहीं, कम्पनी ने हमको सर्वाधिकार सौंप दिये हैं। सियाह-सफेद जो कुछ चाहे करें। तुम समझ नहीं सकतीं, तुम्हारी इस प्रकार ढोठपन की बातें जो तुम कर रही हो इनका क्या परिणाम तुम्हारे लिये होगा। मैं तुम्हें एक बार फिर सोचने का अवसर देता हूँ। वरना यह याद रखो कि तुम आयु पर्यन्त राते रोतें काटोगी और तुम्हें कोई ठिकाना न मिलेगा।

कमला—ठाकुर की बातें सुनकर कमला की आँखों में रक्त भर गया। काँपती हुई बोली कि ओ पाजी! मुझे तो वहम-गुमान तक जरा भी शक न था कि तेरे अन्दर शैतान छिपा हुआ है और अन्दर से काला है। तुझे ज्ञान नहीं कि एक हिन्दू देवी अपने नारी धर्म-कर्त्तव्य को किसी कीमत पर नष्ट करने वाली नहीं होती। तुम जो चाहो करो—यह शब्द कहते हुए कमला ने ठाकुर देवीसिंह के मुँह पर थूक दिया और कोठे के कमरे से बाहर निकल गई।

ठाकुर—हैरान परेशान होकर पहले तो यह सोचा कि

कमला को पकड़वाकर बन्धवाकर ग्रपने मकान पर ले जाऊँ। परन्तु कुछ सहमकर यह विचार किया—जब मुझे ऐसा ग्रवसर मिलता है कि कमला को ग्रपने यहाँ ग्राने को विवश कर सकता हूँ तो क्यों न वह ढग प्रयोग करूँ। यह ठानकर उसके तीनों लड़कों को पकड़वा लिया। फिर कमला को ग्रान के लिए संदेश भेजा, परन्तु उसने आने से इन्कार कर दिया। ग्रब ठाकुर दवीसिंह को बड़ा तैश-क्रोध ग्राया। कमला के एक लड़के को मरवाकर उसका सर कमला के पास भिजवाकर कहलवा भजा कि तुम अब संभल जावो वरना शेष तेरे दोनों लड़कों तथा तुम्हारे पति देव जगन्नाथ का भी यही हाल होगा। कमला ने उत्तर भेजा, जो कुछ ग्रापके ग्रधिकार में हो करो, परन्तु ग्रपने स्त्री धर्म की रक्षार्थ मर मिटूँगी। तुम्हारे पास कदापि नहीं ग्रा सकती, यह उत्तर सुनते ही देवीसिंह ने दूसरे लड़के को मरवाकर उसका सर काटकर कमला के पास भेजा। परन्तु इसका कमला पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। ग्रब तीसरे लड़के के पश्चात् उसके पति का सर कटवाकर भेजा और साथ कहलवा भेजा कि लो अब तुम्हारा सब खेल समाप्त है ग्रब तुम ग्रायु पयन्त ग्रपना सर धुनती रहोगी।

जब कमला के पास ग्रन्तिम सर ग्रपने पति का पहुँचा, तो उसने कहला भेजा कि चूँकि अब मेरा कोई बली-वारिस नहीं रहा ग्रौर मैं विधवा हो चुकी हूँ। अब मैं विवश हूँ कि तुम्हारे पास ग्राऊँ, परन्तु दिन के समय मुझे ग्राते हुए लज्जा व शर्म ग्राती है और किसी दूसरे के संग भी ग्राना नहीं चाहती हूँ। अतः मैं रात्रि के दस बजे पहुँच [illegible] आप भी

वहाँ पर आजावें और मुझे अपने साथ ले चलें। मैं मैले कपड़े पहन करके आऊँगी और एक उजड़ा जोड़ा कपड़ों का साथ लाऊँगी, फिर आपके मकान पर स्नान कर उजला जोड़ा पहनकर आपकी कामना पूर्ण करूँगी।

ठाकुर देवीसिंह यह सन्देश सुनते ही गद्-गद् हो गया, उसने दिल में सोचा कि मेरा तीर चल गया। प्यारे! यह नियम है कि कामी, क्रोधी, लोभी, इन तीनों प्रकार के मनुष्यों की बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह हकीकत की पहचान नहीं कर सकते, वह अपने को इस संसार से ऊँचा समझते हैं। अब देवीसिंह की एक घड़ी एक वर्ष के बराबर गुज़र रही है। बार बार घड़ी की ओर देखता है कि इस घड़ी की सुइयाँ पौन दस नहीं बजातीं। प्यारे! समय तो दौड़ता चला जा रहा है इसी प्रकार महीने, वर्ष, सदियाँ, युग, कल्प, एक एक मिनट कर गुज़र गये! अब जिस घड़ी की ठाकुर देवीसिंह प्रतीक्षा कर रहा था, आ पहुँची वह तत्काल सुन्दर कपड़े पहने-सज-धज के साथ ठीक दस बज मन्दिर पहुँच गया। कमला एक कोने में गड़ांसी बग़ल में दबाए आँखें नीचे करके बैठी थी, कमला को देखते ही तेजी के साथ उसके निकट पहुँचा और बनावटी मुँह बनाकर कमला से कहा कि मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने तुम्हारे पर बहुत अत्याचार किया। मैंने तुम्हारे तीनों बच्चों को मरवाया परन्तु इसकी जिम्मेदारी तेरे सर पर है, यदि तू अपनी ज़िद पर न अड़ी रहती, और जो बात आज मानी है, वह उसी दिन मान जाती तो साँप भी मर जाता और लाठी भी न टूटती। जिस प्रकार ठाकुर देवीसिंह ने बनावट के शब्द कहे थे,

उसी प्रकार कमला ने बनावटी मुसकराहट होठों पर लाते हुए दृष्टि नीचे करके ठाकुर देवीसिंह से कहा कि अपने पति के रहते हुये मैं किस प्रकार आपकी इच्छा को पूरा कर सकती थी। जो कुछ आपने किया है मैं भी यही चाहती थी। अब मैं पूर्ण स्वतन्त्र हो गई हूँ, आपकी सेवा के लिये तैयार हूँ चलिये अब जहाँ मुझे ले चलना हो। ठाकुर देवीसिंह अपने साथ सवारी लाया था, उस पर कमला को बिठाकर घर को ओर चल पड़ा। चलते हुये मार्ग में कमला से कहा कि तुमने नये-नये कपड़े साथ लाने का कष्ट क्यों किया है वहाँ पर सब कुछ तुम्हारा ही है जितने नये जोड़े चाहो पहन सकती हो। कमला ने इसका कुछ उत्तर न दिया फिर उसकी ओर आँख उठाकर मुस्करा पड़ी। अब मकान पर पहुँच गये, देवीसिंह ने कमाल को स्नानागार दिखा दिया। कमला ने स्नानागार में जाकर स्नान किया, नया जोड़ा कपड़ों का पहना फिर बैठकर कुछ समय प्रभु का ध्यान किया। भगवान तथा अपने पतिदेव को याद किया। पश्चात हँसती हुई स्नानागार से बाहर निकली। देवीसिंह उसकी सुन्दरता रूप को देख कामान्ध हो गया, तत्काल उठ खड़ा हुआ। अपनी दोनों भुजाएँ ऊँचीकर फैलाते हुए कमला को छाती से लगाने को लपका, कमला भी कुछ तेजी से आगे बढ़ी। आन की आन में एक कटार देवीसिंह के हृदय में घोंप दा। देवीसिंह तत्काल भूमि पर गिरते ही समाप्त हो गया। तब कमला ने देवीसिंह की छाती से उस रक्त भरी कटार को निकालकर चूमा, पश्चात अपनी छाती में घोंप ली। वह देवी सिंह से कुछ दूर जा गिरी और अपना अमिट नाम इस संसार में छोड़ गई।

चुनांचे वहाँ पर कमला की समाधि बनी हुई है। लोग वहाँ पर फूल बताशे चढ़ाते हैं और सर झुकाकर नमस्कार करते हैं। साथ ही देवीसिंह को समाधि बनी हुई है जब लोग कमला को समाधि पर माथा झुकाकर चलते हैं तो देवीसिंह की समाधि पर पहुँचकर गिनकर पाँच-पाँच जूते मारते हैं और जिस प्रकार कमला ने देवीसिंह के मुँह पर थूका था, देवीसिंह की समाधि पर लोग जूते लगाकर थूकते हैं।

प्यारे! यह था दुराचार-सदाचार का फल और हिन्दू देवियों को पवित्रता का एक दृश्य। सत्य पूछिये तो हमारे भारतवर्ष की रक्षा या तो हमारे ऋषी मुनियों की तपस्या कर रही है या भारतीय देवियों की पवित्रता। परन्तु इस पवित्रता को पुरुष राज्याधिकारी स्वयं इनकी फैशन पुतलियाँ बनाकर और सिनेमा के गन्दे-गन्दे खेल दिखाकर समाप्त कर रहे हैं। ऐ भारतवासियों! सोचो और सम्हलो, यह निश्चय जान लो कि तुम्हारी वर्तमान शिक्षा भारत को मातृ शक्ति को सदाचार से कोसों दूर ले जा रही है। याद रखो इनके चरित्र-हीन होने से चरित्रवान सन्तान उत्पन्न नहीं होगी। चरित्र के न रहने से भारत का सर्वनाश हो जावेगा। अरस्तु से पूछा गया कि किसी देश या मुल्क में जाने से यह कैसे अनुभव करें कि वह देश उन्नति के शिखर पर चल रहा है तो अरस्तु ने उत्तर दिया—वहाँ यह मत देखो कि उस देश में बड़े बड़े कालिज, स्कूल, पाठशालाएँ हैं अथवा बड़ी बड़ी बिल्डिगें हैं, बड़े बड़े धनाढ्य हैं, बड़े दानी हैं, बड़े साइंसदाँ, बड़े योद्धा हैं किन्तु वहाँ पर जाकर यह देखो कि वहाँ पर मातृ शक्ति का क्या

मान है, क्योंकि इसके सुधार से विश्व का सुधार और इसके बिगाड़ से बिगाड़ होता है। यह मकान की नींव है मकान की नींव में कभी सजावट नहीं की जाती किन्तु सुरखी, चूना, सीमेंट, रोड़ी मिलाकर कुटाई की जाती है क्योंकि नींव के पक्का होने पर ऊपर की मञ्जिलें बन सकती हैं। वे हैं तप त्याग संयम। यह है ब्रह्मचर्य, जिसका दिवाला निकाला जा रहा है—

इसका कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली, अनुचित पुस्तकें और अयोग्य शिक्षकों का होना ही है। ऐसे अध्यापक अध्यापिकाएँ जो धर्म-कर्म और मनुष्य जीवन के उद्देश्य से कोसों दूर हैं वह विषय-विकारों का ग्राम बने हुए हैं। देश की उन्नति अवनति का दारोमदार अच्छी विद्या तथा शिक्षा पर ही है। उसके लिये चरित्रवान, सदाचारी, तपस्वी, ईश्वर विश्वासी, आस्तिक, धर्म-कर्त्तव्य के जानने वाले भारतीय संस्कृति के ज्ञाताओं की आवश्यकता है और ऐसी पुस्तकें तैयार हों जिनके पठन-पाठन से मनुष्य अपने जीवन के कर्त्तव्य धर्म को समझें और चरित्रवान, सदाचारी बनकर भारत के गौरव को बढ़ावें परन्तु वर्तमान काल में स्कूलों, कालिजों तथा पाठशालाओं में ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं जिनके पढ़ने से चरित्र-सदाचार का सत्यानाश किया जा रहा है और भारतीय संस्कृति का अधः-पतन हो रहा है। प्रकृति के पुजारी आत्मा-परमात्मा को क्या जानें। इनका उद्देश्य तो खाना-पीना, सोना-भोगना और विषय विकारों में लिप्त रहना है। वर्तमान विद्या पढ़ने से लड़कियाँ प्रायः लज्जाहीन, चरित्रहीन और निरंकुश होती जा रही हैं

कामकाज घर में करना ऐसी कन्याएँ अपमान समझती हैं। इसके विपरीत निकम्मा, बेकार बैठना, अपने शरीर की बनावट सजावट में तथा सारे दिन रेडियो सुनते रहना इत्यादि में अपना सौभाग्य समझती हैं। यही नहीं, किन्तु माता पिता का निरादर करना और उनकी बात को काट देना अपना अधिकार समझती हैं। ऐसी हीन पतित अवस्था में वर्तमान राज्य अधिकारियों, विषय विकारियों के हाथ से इस राज्य शासन को बागडोर खींच लें या उनको सदबुद्धि प्रदान करें। पर विषय विकारियों के अन्धों को भगवान कैसे सदबुद्धि प्रदान करेगा, जब उनका बीज भारतीय संस्कृति को नाश करने का है तो भला जिस राज्य में रावण-दुर्योधन (काम-लोभ) जैसे राज्याधिकारी हों वह देश की रक्षा क्या कर सकेंगे? यह आँख के अन्धे कामी-लोभी स्वयं तो कुएँ में डूबेंगे ही साथ ही भारत माता को भी ले डूबेंगे। अब तो भगवान हो भारतीय संस्कृति की रक्षार्थ किसी महान आत्मा को भेजें (भगवान राम भगवान कृष्ण जैसो) ताकि ऐसे रावण, दुर्योधन वायुमण्डल का नाश कर रामराज्य स्थापित हो जावे और महात्मा गांधी की इच्छा भी पूर्ण हो जो राम राज्य चाहते थे। परमात्मा हमें वह ज्ञान प्रदान करें जिससे हम आत्मज्ञानी होकर अपने धर्म कर्त्तव्य को जानते हुये तथा आचरण करते हुए जीवन को सफल कर सकें। ओ३म् शम्।

'सन्तों की वाणी का संग्रह'

(प्रेम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार)

सन्त महात्मा विश्व कल्याण के प्रेम धाम होते हैं, उनकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभावतः हो विश्व कल्याण के लिये होती है, उनकी वाणी से अमर ज्ञानामृत झड़ता है । नेत्रों से प्रेम, शीतल, सुखद ज्योतिं धारा बहती रहती है, मस्तिष्क से अखिल जगत का कल्याण प्रस्तुत होता है, हृदय से आनन्द का प्रवाह बहता रहता है । जिस स्थान पर रहते हैं वही पावमान सत्कर्म क्षेत्र बन जाता है वे जिन कर्मों को करते हैं वे कर्म आदर्श समझे जाते हैं । सन्त सभी देशों में सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों में होते हैं हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी, बौद्ध, जैन आदि सभी मतों में सच्चे सन्त हुये हैं । किसी देश या काल में विशेष सन्तों का संकोच नहीं । (पार्थकम) नहीं किया जा सकता, सभी देशों में कोई न कोई सन्त महात्मा रहते हैं और वे गुप्त तथा प्रत्यक्ष रूप में जगत कल्याण करते रहते हैं । जो कोई उनके सम्पर्क में आता है, वही ताप, पाप से मुक्त होकर महात्मा बन जाता है ।

अमृत वचन

१—भाव के नेत्र जहां खुले, वहीं सारा विश्व कुछ निराला ही दिखाई देने लगता है ।

२—भगवान से मिलन होने के लिए भाव ही आवश्यक हैं, ज्ञान के नेत्र खुलने से ग्रंथ समझ में आता है उसी का रहस्य

खुलता है। प्रभाव के बिना ज्ञान अपना नहीं होता।

३—भाव न हो तो साधन का कोई विशेष मूल्य नहीं।

४—यदि तुम भगवान को चाहते हो तो भाव से उनके गीत गाओ। दूसरे के गुण-दोष न सुनो, मन में भी न लाओ। सन्त के चरणों की सेवा करो। सबके साथ विनम्र होकर थोड़ा बहुत जो कुछ बन पड़े उपकार करो यह सुलभ उपाय है।

५—आत्मबोध के लिए वैसी छटपटाहट हो जैसे जल के बिना मछली छटपटाती है।

६—भक्त के पुकारने की देर है भगवान के पधारने की देर नहीं, इसलिए रे मन! जल्दी कर।

७—भगवान भक्त के आगे पीछे उसे संभाले रहते हैं। उस पर जो कोई आघात हो उनका निवारण करते हैं उसके योग-क्षेम का सतत भार स्वयं उठाते हैं और हाथ पकड़कर उसे मार्ग दिखाते हैं।

८—जिसे गुरु का अनुग्रह मिला हो गुरु सेवा के परम आनन्द का जिसने भोग किया हो वही उसकी माधुरी जान सकता है।

९—गुरु कृपा के बिना कोई साधक कभी कृतकार्य नहीं हुआ।

१०—सद्गुरु शिष्यों के नेत्रों में ज्ञान अंजन लगाकर उसे दृष्टि देते हैं। ऐसे सद्गुरु बड़े भाव से जब मिलें तब अत्यंत नम्रता, विमल सद्भाव और दृढ़ विश्वास के साथ उनकी शरण

लो। अपना सम्पूर्ण हृदय उन्हें अर्पण कर यों उनके प्रति अपने चित्त में परम प्रेम धारण करो। उन्हें प्रत्यक्ष परमेश्वर समझो इससे भक्ति ज्ञान का समुद्र प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाओगे।

११—महात्मा सिद्ध पुरुष ईश्वर के रूप होते हैं। वह केवल स्पर्श से, एक कृपा कटाक्ष से केवल संकल्प मात्र से भी श्रद्धा सम्पन्न साधक को कृतार्थ करते हैं। बड़े से बड़े पापी को क्षण मात्र में पावमान कर देते हैं।

१२—शिष्य और गुरु सम्बन्ध पूर्वज-वंशज जैसा ही है। श्रद्धा नम्रता, शरणागति और आदर भाव से शिष्य गुरु का मन मोह लेता है। उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है।

१३—भगवान की कृपा से जब भाग्य उदय हो कि श्री गुरु दर्शन हों तब सर्व अन्तःकरण से श्री गुरु की शरण लो, उनके बालक बनकर अनन्य भाव से उनकी सेवा करो, इससे तुम धन्य होगे।

१४—सन्त दुर्लभ तो हैं पर अलभ्य नहीं, चन्दन महँगा मिलता है पर मिलता तो है।

१५—मुमुक्षु को गुरु ढूँढना नहीं पड़ता। गुरु ही ऐसे शिष्यों को जो कृतार्थ होने योग्य हुए हों ढूँढा करते हैं।

१६—फल के परिपक्व होते ही तोता बिना बुलाए ही आकर उस पर चौंच मारता है उसी प्रकार विरक्ति जीव को देखते ही दयालु गुरु दौड़े आते हैं और आत्म रहस्य बताकर कृतार्थ करते हैं।

१७—गुरु शिष्य नियुक्त होते हैं गुरु शिष्य का सम्बन्ध अनेक जन्म-जन्मान्तरों से चला आता है और यह गुरु निश्चित समय पर निश्चित शिष्य को कृतार्थ किया करते हैं।

१८—इस मन की एक उत्तम गति है यदि यह कहीं परमार्थ में लग गया तो चारों मुक्तियों को दासियाँ बना छोड़ता है और पारब्रह्म को बाँध कर हाथ में ला देता है। इतना बड़ा लाभ मन के वश करने में है।

१९—मन को प्रसन्न करना उसे विषय प्रवाह से खींच कर प्रभु भजन के लंगर में बाँधना है। मन को बड़ी रखवाली करनी पड़ती है। यह जहाँ जहाँ चाहे वहाँ वहाँ इसे बड़ी सावधानी के साथ खींच लेना पड़ता है।

२०—नित्य जागकर इस मन को संभालना पड़ता है मद उन्मत्त हाथी जैसे अंकुश के बिना नहीं संभलता वैसे ही यह चंचल मन अखण्ड सावधान रहे बिना ठिकाने नहीं रहता। एक क्षण में पचासों जगह चक्कर लगाकर आने वाले इस मन को भगवान दया करें, तो ही रोक सकते हैं।

२१—यह मन संसार की बातें ही सोचता रहता है—हे भगवान ! मेरे तेरे बीच यही एक बड़ी बाधा है। मैं तो भजन पूजन करता हूँ पर अन्दर मन संसार का ही ध्यान करता रहता है। हे प्रभो ! आओ दौड़ आओ, तुम ही इस अन्तर में आकर भरे रहो।

२२—मनुष्य किसी भी वर्ण में उत्पन्न हुआ हो वह यदि सदाचारी और भगवत भक्त है तो वही सबके लिए वन्दनीय

और श्रेष्ठ है। कसौटी है साधुता और भगवत भक्ति।

२३—अपना चित्त शुद्ध हो तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं शेर और साँप भी अपना हिंसा भाव भूल जाते हैं। विष अमृत हो जाता है, अघात हित होता है। दुःख सर्व सुख रूप फल देने वाला बनता है। आग की लपट ठंडी ठंडी हवा हो जाती है। जिसका चित्त शुद्ध है उसको सब जीव अपने जीवन के समान प्यार करते हैं। कारण सबके अन्तर में एक ही भाव है।

२४—आघात करने वाला लोहा भी पारस के स्पर्श मात्र से सोना हो जाता है। दुष्टजन भी सन्तों के स्पर्श से आकर सन्त बन जाते हैं।

२५—जो कोई प्रभु का प्रिय बन गया उसका उत्तम या कनिष्ट वर्ण क्यों न हो चारों वर्णों का यह अधिकार है। उसे नमस्कार करने में कोई दोष नहीं।

२६—हे प्रभो! चित्त की उल्टी चाल में फँस गया था, मृग जाल ने मुझे भी धोखा दिया था, पर आपने बड़ी कृपा की जो मेरी आँखें खोल दीं, तुमने मेरी पुकार सुनी इससे मैं निर्भय हो गया हूँ।

२७—प्रभु अपने भक्तों को दुःखी नहीं करते अपने दास की चिन्ता अपने ही ऊपर उठा लेते हैं। सुख पूर्वक प्रभु का भजन करो हर्ष के साथ उसके गुण गाओ कलि काल से मत डरो भगवान अपने भक्तों को छोड़ते नहीं।

२८—सन्तों का मुख्य कार्य जीवों की मोह-माया निद्रा

से जगा देना होता है स्वयं जगे रहते हैं दूसरों को जगा देते हैं। जीवों को अभय दान देते हैं और उनका दैन्य नष्ट कर उन्हें स्वानन्द साम्राज्य पद पर आरूढ़ करते हैं।

२९—सन्तों के उपकार माता-पिता के उपकार से अधिक हैं। सब छोटी, बड़ी नदियाँ जिस प्रकार अपने नाम-रूपों के साथ जाकर ऐसी मिल जाती हैं जैसे उनका अस्तित्व न हो, उसी प्रकार त्रिभुवन के सब सुख दुःख सन्तों के बोद्ध महार्णव में विलीन हो जाते हैं।

३०—खोल-खोल आँखें खोल—बोल अभी तक क्या आँखें नहीं खुलीं ?—अरे अपनी माता की कोख में क्या तू पत्थर पैदा हुआ था तूने यह जो नर तन पाया है यह बड़ी भारी निधि है जिस विधि से कर सके इसे सार्थक कर—सन्त तुझे जगाकर पार उतर जावेंगे तुझे भी पार उतरना चाहिए। तू कुछ कर। अनेक यौनियों में भटकने के पश्चात् यह नर-नारायण की जोड़ी मिली है। नर तन जैसा ठाँव मिला है, प्रभु में अपने चित्त को लगा।

३१—सुन रे सज्जन ! अपने स्वहित के लक्षण सुन—मन से प्रभु का स्मरण कर, प्रभु के गुण गान कर, फिर बन्धन कैसा ?

३२—परमपिता की शरण लो उसके होकर रहो उसके गुण गान में मग्न हो जाओ। संसार जो हौवा बन कर सामने आया है इसे भगा दो और इसी देह से इन्हीं आँखों से मुक्ति की आनन्द लूटो।

३३—अनुताप करते हुए प्रभु से यह प्रार्थना करो मैं तो अनाथ हूँ, अपराधी हूँ, कर्महीन हूँ, मन्द मति और जड़ बुद्धि हूँ—हे कृपानिधे ! अपनी वाणी से कभी मैंने तुम्हें नहीं याद किया, तुम्हारा गुणगान भी नहीं सुना और न गाया है, अपना हित छोड़ लोक लाज के पीछे मरा क्या ? तेरा भजन कीर्तन सन्तों का संग कभी मुझे अच्छा नहीं लगा। पर निन्दा में बड़ी रुचि थी, दूसरों की खूब निन्दा की, पर उपकार न मैंने किया और न दूसरों से कभी कराया, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में कभी दया न आई, ऐसा व्यवसाय किया जो न करना चाहिये था और इससे पाया तो क्या, अपने कुटुम्ब का भार ढोता फिरा, केवल इस पेट के पालन करने में हाथ-पैर मारता रहा। मुझसे न सन्त सेवा बनी, न दान-पुण्य बना, कुसंग में पड़कर अनेक अन्याय और अधर्म किए। मैंने अपना आप ही सत्यानाश किया, मैं अपना आप ही बैरी बना। भगवन ! तुम दया के निधान हो, मुझे भवसागर से पार उतारो।

३४—भवसागर को तैर कर पार करते हुए चिन्ता किस बात की करते हो, उस पार तो 'वह' कटी पर कर धरे खड़े हैं। जो कुछ चाहते हो उसके वही दाता हैं उनके चरणों में जाकर लिपट जाओ वह जगत स्वामी तुमसे कोई मूल नहीं लेंगे। केवल तुम्हारी भक्ति से ही तुम्हें अपने कन्धे पर उठा ले जायेंगे। प्रभु जहाँ प्रसन्न हुए तहाँ भक्ति और मुक्ति की चिन्ता कहाँ, वहाँ दैन्य और दारिद्रय कहाँ ?

३५—संसार में बने रहो पर प्रभु को न भूलो, प्रभु नाम

जपते हुये न्याय नीति से सब काम करते चलो इससे संसार भी सुखद होता है।

३६—सुख कण बराबर है तो दुःख पहाड़ बराबर, संसार के विषय में सबका यही अनुभव है। माँ-बाप स्त्री, पुत्र, संगी-साथी, धन-दौलत, राजा-महाराजा कोई भी हमें क्या मृत्यु से बचा सकता है। यह शरीर तो काल का क्लेवा है।

३७—कौड़ी कौड़ी जोड़कर करोड़ों रुपये इकट्ठे करो, पर साथ तो एक लंगोटो ही जायगी।

३८—संगी साथी एक एक करके चले, अब तुम्हारी भी बारी आवेगी, क्या ग़ाफिल होकर बैठे हो ? काल सिर पर सवार है अब भी सावधान हो जाओ, नहीं तो धोखा खाओगे, नशे के बीच मारे जाओगे।

३९—पर उपकार करो पर निन्दा मत करो, परस्त्रियों को माँ-बहिन समझो, प्राणी मात्र में दया भाव रखो। भगवान को चाहते हो, तो चित्त को मलीन क्यों रखते हो, अभिमान, अकड़, आलस्य, लोक लज्जा, चंचलता, असद व्यवहार, मनोमालिन्य इत्यादि कूड़ा-करकट किस लिए जमा किए हुए हो। केवल बाहरी भेष बना लेने में थोड़ा ही कोई भक्त होता है। जो जी जान से भगवान को चाहते हैं वे अपने प्रेम को सावधानी से बचाए रखें, प्रतिष्ठा को शूर की विष्ठा समझ लें व्यर्थ बाद में न उलझें, अहंकारो तारकसों के संग से दूर रहें, कोई ढोंग-पाखण्ड न रच। स्वांग बनाने से भगवान नहीं मिलते, निर्मल चित्त की प्रेम भरी चाह [illegible] नहीं तो जो कुछ भी करो अन्त

केवल 'आह' है। मिलो उन्हीं में, जो सर्वत्र भाव से समरस मिले हैं वे ही तुम्हारे कुल परिवार हैं, वाद-विवाद में पड़ोगे तो फंदे में फँसोगे।

४०---नेत्रों में अश्रुबिन्दु नहीं, हृदय में छटपटाहट नहीं, तो भक्ति काहे की।

४१---अहिन्ता नष्ट हो, भगवान स्तुति पाठ में सच्ची भक्ति हो हृदय की सच्ची लगन हो, प्रभु पर पूर्ण विश्वास हो, तब काम बनेगा।

४२---इस संसार में आए हो, तो अब उठो, जल्दी करो और उन उदार प्रभु की शरण में जाओ, यह देह तो देवताओं की है। धन सारा तो कुबेर का है इसमें मनुष्य का क्या है? देने दिलाने वाला, ले जाने लिवाने वाला तो कोई और है, इसका यहाँ क्या धरा है। रे मूर्ख! क्यों नाशवान के पीछे भगवान की ओर पीठ फेरता है।

४३---ससार का बोझ सिर पर लादे हुए दौड़ने में बड़े खुश हैं। अरे निर्लज्ज! अपनी संसारी पन पर बैल की तरह इस बोझ के ढोने पर इतना क्यों इतराता है?

४४---परनारी और पर द्रव्य का अभिलाषी जहाँ हुआ, वहाँ से भाग्य का ह्रास आरम्भ हुआ।

४५—पर स्त्री और पर धन बड़े खोटे हैं बड़े बड़े इनके चक्कर में मटियामेट हो गये। इन दोनों को छोड़ दें तभी अन्त में सुख पाओगे।

४६—मार्ग में अन्धे के आगे जैसे आँख वाला चलकर रास्ता बताता है, उसी तरह सन्त महापुरुष भी धर्म का आचरण करके जो अज्ञानी हैं उन्हें धर्म का तत्व बताते हैं।

४७—वेद-शास्त्र जिस चीज़ को छोड़ देने को कहें उसे चाहे राज्य भी क्यों न हो तृणवत त्यागें, शास्त्र जिसे ग्रहण करने को कहें चाहे वह विष भी क्यों न हो उसे अवश्य ग्रहण करें।

४८—फिर चलो, फिर चलो रे जीवो! नहीं तो गोते खाओग। माया नदी को इस बाढ़ में बहे जाओगे। भौन्दी का पानी, प्यारे! बड़े वेग से खींचता है और बड़े बड़े तैराकों को उठाकर नीचे गिरा देता है। संसार क्षण भंगुर है इसका कोई भरोसा नहीं। यह दुर्लभ नर तन छूट जायगा तब पीछे पछताओगे।

४९—जो गए हुए का स्मरण नहीं करता, मिले हुए की इच्छा नहीं करता, अन्तःकरण में 'मेरू' के समान अचल रहता है वही निरन्तर संन्यासी है।

५०—अपनी पूज्यता अपने आँखों न देखो, अपनी कीर्ति अपने कानों न सुनो, एसा न हो जिससे लोग यह पहचान लें यह अमुक है। वृहस्पति के समान सवज्ञता प्राप्त हो तो भी महिमा के भय से अज्ञानियों की भाँति रहो, अपना चातुर्य धपादो, अपना महत्व बिसार दो और अपना बावलापन लोगों को दिखाओ।

५१—साधु के लिए अपना पराया कुछ भी नहीं सारे

विश्व से उसकी जान पहचान है वैसे ही उसका स्वभाव सरल होता है।

५२—माँ के पास जैसे बच्चे को जाते कोई सोच संकोच नहीं होता वैसे ही संत के लिए लोगों को अपना मन देते हुए शंका नहीं होती। उसके लिए कोई कोना-अन्तरा नहीं हुआ करता, उसकी दृष्टि में कपट नहीं होता। दसों इन्द्रियाँ उसकी सरल निश्प्रपंच और निर्मल होती हैं।

५३—भागते हुए मेघों के साथ आकाश नहीं दौड़ता वैसे ही सन्त पुरुष का मन चलते हुए शरीर के साथ नहीं चला करता ध्रुव जैसा स्थिर रहता है।

५४—जो तीर्थों में पवित्र जलाशयों के किनारे सुन्दर तपोवनों में और गुफाओं में रहना पसन्द करता है, एकान्त से जिसको अत्यन्त प्रीति होती है और जन पद से जिसका जी ऊबा हुआ होता है उसे ज्ञान की मनुष्य आकार मूर्ति जानो।

५५—काया वाचः मनसा अपने पास जो द्रव्य हो उसके द्वारा वैसे भी अति होकर आवे तो उसे विमुख न जाने देना। वृक्ष जैसे फूल, फल, छाया, मूल पत्र सब कुछ जो कोई पथिक आ जाए उसके सामने उपस्थित करने में नहीं चूकता वैसे ही प्रसंग अनुसार शरण आया पथिक कोई आ जाए तो अपने धन-धान्य आदि के द्वारा उसके काम आना इसका नाम है दान।

५६—दान सर्वस्व देना ही है। अपने लिए खर्च करना व्यर्थ गँवाना है। औषधि दूसरों को फल देती है और स्वयं नष्ट हो जाती है।

५७—अपने गुणों से दूसरे के दोष दूर करके उनकी ओर देखना चाहिए।

५८—सात्विक ज्ञान वही है जिसमें उस ज्ञान के साथ ज्ञाता और ज्ञेय हृदय में एक हो जाते हैं। जैसे सूर्य अन्धकार को नहीं देखता, नदियाँ समुद्र को नहीं देखतीं, अपनी छाया अपने से अलग करके पकड़ी नहीं जाती वह सात्विक ज्ञान है वही मोक्ष लक्ष्मी का भुवन है।

५९—दोनों दर्पण उठकर एक दूसरे के आमने सामने आ गए अब बताएँ कौन किसको देख रहा है?

६०—अपने निर्वाह के लिए जो चिन्ता अथवा प्रपंच नहीं करता वही सच्चा विश्वासी है।

६१—जिसका मन पवित्र नहीं उसका कोई काम पवित्र नहीं होता।

६२—जो आँखें ईश्वर की ताबेदारी में रहना भला नहीं समझतीं उनका तो फूट जाना ही अच्छा है। जो जीभ ईश्वर की चर्चा नहीं करती वह गूँगी ही रहे तो अच्छा है, जो कान सत्य नहीं सुनते वह बहरे ही रह जाएँ तो अच्छा और जो मन ईश्वर की सेवा में नहीं लगता उसका न रहना ही अच्छा है।

६३—जो इस नाशवान संसार में आसक्त नहीं है वह अनुभव सिद्ध ज्ञानी ऋषि है।

६४—प्रायश्चित्त की तीन सीढ़ियाँ हैं आत्मग्लानि दूसरी

बार पाप न करने का निश्चय, और आत्म शुद्धि ।

६५—सच्चा सन्त जब बाहर से चुपचाप होता है तब वह भीतर ही भीतर ईश्वर से बात करता रहता है। जब उसके नेत्र मूँदे होते हैं तब वह ईश्वर की महिमा के स्वरूप को देखता रहता है।

६६—ईश्वर जिस पर खुश होता है उसे नदी की सी दान-शीलता, सूर्य की सी उदारता और पृथ्वी की सी सहनशीलता प्रदान करता है।

६७—साधना के लिए जो कुछ भी करना पड़े सब करना परन्तु उसमें भी प्रभु कृपा का ही प्रताप समझना, अपना पुरुषार्थ नहीं।

६८—जो ईश्वर के निकट आ गया उसे किस बात की कमी, सभी पदार्थ और सारी सम्पत्ति उसी की है क्योंकि उसका परमप्रिय सर्वव्यापी और सारी सम्पत्ति का स्वामी है।

६९—जो अपना परिचय ईश्वर ज्ञानी कह कर देता है वह मिथ्या अभिमानी है। जो यह कहता है मैं उसे नहीं जानता वही बुद्धिमान है।

७०—ईश्वर को जानने वाले का हृदय निर्मल काँच की हाँडी में जलते हुए दीपक के समान है वह सत्य, सुख, शाँति की चादर ओढ़कर सम्मान की भूमि में स्वयं प्रभु की गोद में सो जाता है।

७१—इन असंख्य तारों और विभू मण्डल के सिरजनहार

की दृष्टि तो जहाँ कहीं भी होगा वहीं पर मिलेगी ऐसा विचार कर सदा सर्वदा सावधान और पवित्र रहना।

७२—मनुष्य का सच्चा कर्त्तव्य क्या है ? ईश्वर के सिवाय किसी दूसरी चीज से प्रीति न जोड़ना।

७३—ईश्वर के भजन पूजन में जो संसार को सर्व चीजों को भूल जाता है उसे हर एक वस्तु में ईश्वर ही ईश्वर दिखाई देता है।

७४—भीतर से प्रभु की गूढ़ भक्ति करना किन्तु बाहर से उसे प्रगट न होने देना साधुता का मुख्य चिन्ह है।

७५—जो मन की मलीनता से रहित दुनियाँ के जञ्जाल से मुक्त और लौकिक तृष्णा से विमुख है वही संत है।

७६—ईश्वर के पाने के लिए जिसका हृदय तरस रहा है उसी का जन्म धन्य है उसकी माता धन्य है कारण उसका सर्वस्व तो ईश्वर में समाया हुआ है।

७७—फ़कीर वह है जिसे आज और कल किसी दिन की परवाह नहीं जो अपने और प्रभु के सम्बन्ध के आगे लोक और परलोक दोनों को तुच्छ समझता है।

७८—बिना प्रभु का नाम लिए कोई बात बिचारने अथवा करने से बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

७९—जो छोटे छोटे प्राणियों से प्यार नहीं कर सकता वह ईश्वर से क्या प्यार करेगा ?

८०—हे प्रभु ! मन ऐसी कृपा कीजिए कि मेरी वाणी

केवल तेरा ही गुण गान करे, मेरे हाथ तुम्हारे काम में लगा रहे, मेरा मस्तिष्क तुम्हारे ही चरणों में झुके। मेरे नेत्र सर्वत्र तुम्हारे ही दर्शन करें, मेरे कान तुम्हारे ही गुणों का सदा श्रवण करें, मेरे चित के द्वारा तुम्हारा ही चिन्तन हो और मेरे हृदय को तेरा स्पर्श प्राप्त हो।

८१—हम सदा भगवान पर निर्भर रहना सीख लें अपना सब कुछ उन्हें सोंपकर उनके हाथ की कठपुतली बन जावें। वह जब जो जैसे करे उसी में हमें आनन्द का अनुभव हो।

८२—भगवत आश्रय भगवत नाम से पापों का मूल नाश हो जाता है यह निश्चय है।

८३—प्रभु की प्राप्ति का एक मात्र मार्ग प्रेम ही है। यह प्रेम शुद्ध सात्विक और निष्काम होना चाहिये।

८४—भक्त ज्यूंहो प्रभु का सर्वभाव से आश्रय लेता है त्यूं ही परमेश्वर उसकी रक्षा, योग, क्षेम का सारा भार अपने ऊपर ले लेता है।

८५—जैसे मल से धोने से मल दूर नहीं होता वैसे हो भोग प्राप्ति जनित से भोग का अप्राप्ति जनित दुःख नहीं मिट सकता, कीचड़ से कीचड़ धुलता नहीं।

८६—हे प्रभु ! आपके सिवा मेरा कोई नहीं आप मेरे हैं। तो सब कुछ मेरा है। मुझे अपने से जरा भी प्रथक न करो, मेरे सामने अपने सिवा किसी को न आने दो।

८७—भगवान की पूजा के लिए सात पुष्प उपयोगी हैं।

अहिंसा, इन्द्रिय संयम, प्राणियों पर दया, क्षमा, मन को वश में करना, ध्यान और सत्य, इन फूलों से भगवान प्रसन्न होते हैं।

८८—भगवत प्राप्त पुरुष भगवत भजन को छोड़कर दूसरे का पथ प्रदर्शक नहीं बनता क्योंकि वह अपने प्रभु के सिवा किसी भी रक्षक, शिक्षक मार्ग दर्शक नहीं देखता।

८९—बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति बिना भगवान प्रसन्न नहीं होते और भगवत कृपा बिना जीव को स्वप्न में भी शांति नहीं मिल सकती।

९०—जिसके घर से अतिथि निराश लौट जाता है उसके सैकड़ों घड़े घी का होम किया हुआ व्यर्थ है। अतिथि की जाति-पांत विद्या आदि न पूछा करें। देवता समझ कर इसका सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि में सब देवता बसते हैं।

९१—लोगों के सामने अपने दोष स्वीकार करने में जिस को जरा सा भी संकोच नहीं होता इतना ही नहीं परन्तु जो इसी में अपनी भलाई समझता है तथा अपने अच्छे काम दूसरों को जानने की जो इच्छा बिल्कुल नहीं रखता और जो दृढ़ संकल्प वाला है वह सच्चा सत्य निष्ठ और सच्चा साधक है।

९२—जिस गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग यह धर्म होते हैं वह मरकर इस लोक से परलोक को प्राप्त होकर सोच नहीं करता।

९३—जो दूसरों को बदनाम करके नाम कमाना चाहते हैं

उनके मुँह पर ऐसी कालिमा लगेगी जो मरने पर भी नहीं धुलेगी ।

९४-- जिस घर में साधु की निन्दा होती है वह समूल नष्ट हो जाता है इसकी नींव नाम और जगह का भी पता नहीं लगता ।

९५—मनुष्य वह काम तो नहीं करता जो उसके अपने वश में हैं परन्तु वह करता है जो दूसरे के वश में हैं अर्थात् वह अपने दोषों का त्याग तो नहीं करता, परन्तु दूसरों के दोष छुड़ाना चाहता है कितनी भूल है ।

९६——नम्रता का कवच पहन लेने पर कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता, कपास की रुई तलवार से भी नहीं कटती।

९७—दुर्जन यदि विद्वान हो, तो भी उसका संग कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि मणि से शोभित सर्प क्या भयानक नहीं होता ।

९८—जरा सी कामना रहते भगवान नहीं मिल सकते, तागे में यदि जरा सा भी खुदा न हो तो वह सुई में नहीं जा सकता।

९९—सबके साथ दयालुता का बर्ताव करो, चाहे वे किसी भी दशा में क्यों न हो, क्रोध की अवस्था में भी दया पूर्ण शब्दों का ही प्रयोग करो ।

१००—लोभ महापाप की खान है, अधर्मी झूँठ, लोभ का मन्त्री है, तृष्णा स्त्री है जो उसे मन्त्रणा देती है, लोभ

से मनुष्य को न तो उन्नति अवनति का पता होता है न काल का।

१०१—जो मनुष्य पाप के द्वारा कटुम्ब का भरण-पोषण करता है उसको महा घोर नरक में जाना पड़ता है, इस नरक को भोगने के पश्चात् वह और भी नीच योनियों में जाकर भाँति भाँति के कष्ट भोगता है।

१०२—शरीर से किए हुए दोषों से मनुष्य को स्थावर (वृक्ष आदि) योनि मिलती है वाणी द्वारा किए हुए कर्मों के दोष से पशु-पक्षी की योनि मिलती है और मन द्वारा किए हुए दोष से चाण्डाल की योनी मिलती है।

१०३—पिता के क़र्ज (ऋण) को चुकाने वाले तो पुत्र आदि होते हैं परन्तु भव-बन्धन को छुड़ाने वाला तो आपके सिवा और कोई नहीं है।

१०४—जो मनुष्य सदा चिन्ता में डूबे रहते हैं, निरन्तर भयभीत रहते हैं, मन को सदा क्रोध से पूर्ण रखते हैं वह सदा ही प्राय: आधे बीमार रहते हैं, चिन्ता में डूबे रहने वाले को अन्न अच्छी तरह से कभी नहीं पचता।

१०५—अधिक जन समुदाय में बसने की रुचि ही बाँधने वाली रस्सी है, पुण्य आत्मा लोग ही इस रस्सी को तोड़ कर एकान्त में तप करते हैं पापी लोग इस रस्सी में दिनों दिन दृढ़ता के साथ बँधे रहते हैं।

१०६—चन्दन के पेड़ जब उठाते हैं तभी वह अपने आस-

पास सुगन्ध नहीं फैलाते, जब उनकी क़लम की जाती है तभी वह चारों ओर अपनी सुगन्ध फैलाते हैं। इसी प्रकार संकट में मनुष्यों के गुणों का विकास होता है।

१०७—दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील और सन्तोष इन छः को धारण करके जो भगवान को स्मरण करता है वह निश्चय ही मोक्ष पाता है।

१०८—ईश्वर आश्रित मनुष्य में तीन बातें होती हैं। (१) उसकी विचारधारा सदा ईश्वर की तरफ बहती रहती है। (२) ईश्वर में ही उसकी स्थिति होती है। (३) ईश्वर की प्राप्ति के लिए उसके सारे कर्म होते हैं।

१०९—धन, बैभव, कुटुम्ब, विद्या, दान, रूप, बल और कर्म आदि गर्व से अंधे होकर दुष्ट लोग भगवान और भगवान के भक्त महात्माओं का तिरस्कार किया करते हैं।

११०—रात को पहले पहर सब जागते हैं, दूसरे पहर भोगी जागते हैं, तीसरे पहर चोर जागते हैं, चौथे पहर योगी जागते हैं।

१११—संसार में वैसे ही रहो जैसे मुँह में जीभ रहती है जीभ कितना ही घी खा ले परन्तु चिकनी नहीं होती।

११२—जिसने युद्ध में लाखों आदमियों को जीत लिया वह असली विजय नहीं है वास्तविक विजय वही है जिसने अपने आपको जीत लिया है।

११३—मन को सन्मार्ग पर ले जाने का पहला साधन

सत्य है, दूसरा संसार से उपरामता, तीसरा आचरण की पवित्रता, चौथा अपने अपराधों के लिए परमात्मा से क्षमा की प्रार्थना करना।

११४--बदला लेने का ख्याल छोड़कर क्षमा करना, अंधकार से प्रकाश में आना है और जीते जी ही नरक की जगह स्वर्ग में सुख भोगना है।

११५--मान-बढ़ाई अथवा प्रतिष्ठा की इच्छा करना मृत्यु की इच्छा करने के समान है।

११६--माता-पिता ईश्वर के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, साक्षात प्रत्यक्ष देवता हैं। पिता माता में परमात्म सत्ता की स्फूर्ति के दर्शन कर गाढ़ी भक्ति भाव से इनकी सेवा करते रहने से भी निश्चय ही मनुष्य को सिद्धि मिल जाती है।

११७--हृदय की सरलता और निर्मलता ईश्वरीय ज्योति है। यह ज्योति ही ईश्वर का मार्ग दिखलाती है। प्रभु से क्षमा की आशा इन साधनों की ओर खींचती है प्रभु का भय ही पापों से निवृत करता है और प्रभु महिमा का स्मरण ही इस सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ाता है।

११८--भगवान के दास कहलाकर जगत की आशा मत रखो जब समर्थ स्वामी को प्राप्त कर लिया, तब किसी के आगे दीन क्यों होते हो ?

११९--काम, क्रोध बड़े ही क्रूर हैं इनमें दया का नाम नहीं इन्हें काल ही समझो, यह ज्ञान निधि के सर्प हैं। विषय

कन्दरा के बाघ, भजन मार्ग के घातक यह जल में नहीं, बिना ही जल के डुबो देते हैं, बिना ही आग के जलाते हैं और बिना शस्त्र के मार देते हैं।

१२०—दुर्लभ मनुष्य चोला पाकर और वेद शास्त्र पढ़ कर यदि संसार में फँसा रहे तो फिर संसार बन्धन से छूटेगा कौन ?

१२१—काम, क्रोध, लोभ और मोह का त्याग कर आत्मा में देख कि मैं कौन हूँ। जो आत्म ज्ञानी नहीं हैं, जो अपने स्वरूप या आत्मा के सम्बन्ध में नहीं जानते वह मूर्ख नरकों में पड़े रहते हैं।

१२२—चञ्चल मन से सिद्धि दूर भागती है अगर मन एक ही ठिकाने ठहर जाए तो सहज में ही हीरा पैदा हो जाता है।

१२३—जगदीश से मिलने के लिए एकाग्र चित्त की आवश्यकता है।

१२४—वासनाहीन निर्मल चित्त वाले पर उपदेश का असर (प्रभाव) शीघ्र पड़ता है और ईश्वर अनुराग शीघ्र उत्पन्न होता है इसलिए अभ्यास करो।

१२५—खाली पेट भरने को दूसरे का मुँह मत ताको, यदि मुँह ही ताकना है तो उस परमात्मा का ताको जो भाव शून्य है और सबका दाता है।

१२६—जिसे संतोष है वह सदा सुखी है उसको कोई सुख नहीं जिसकी इच्छाएँ बढ़ी हुई हैं।

१२७—जिसे तृष्णा है वह सदा दुखी है जो सुखी होना चाहते हैं वह तृष्णा का त्याग कर दें और परमात्मा जो दें उसमें सन्तुष्ट रहें।

१२८—जहाँ सन्तोष है वहाँ भगवान है जहाँ भगवान है वहाँ सन्तोष है।

१२९—जिस प्रकार अञ्जलि में जल नहीं ठहरता उसी प्रकार लक्ष्मी भी किसी के पास नहीं ठहरती।

१३०—मनुष्यों ! होश करो, ग़फ़लत की नींद छोड़ो वह देखो मौत तुम्हारा द्वार खटखटा रही है।

१३१—नाशबान सम्पदा की खोज में जीवन खपाना मूर्खता है। प्रतिष्ठा के पीछे परेशान रहना पागलपन है ऊँचे ऊँचे पद की लालसा नरक में ढकेलने वाली है भौतिक इच्छाओं पर फ़िदा हो जाना मृत्यु के द्वार खोलना है।

१३२—भगवान ने कहा है जो मेरा अनुकरण करता है वह अंधकार में नहीं भटकता।

१३३—यदि तुम कुछ सीखकर या बात जानकर लाभ उठाना चाहते हो तो छुपे रहने का यत्न करो और लोगों से आदर पाने का यत्न मत करो।

१३४—सबसे उत्तम और सबसे लाभदायक अध्यायेन सच्चा आत्म-ज्ञान और आत्म विचार है।

१३५—हम सभी दुर्बल प्राणी हैं परन्तु हमें अपने से अधिक दुर्बल किसी को भी न समझना चाहिए।

१३६—जितना मनुष्य अपने अन्तर में मिलने लगता है उतना वह अन्तःकरण से सरल और पवित्र हो जाता है। उतनी ही अधिक ऊँची चीजें वह बिना परिश्रम के समझने लगता है क्योंकि उसे स्वयं परमात्मा ही अन्तः प्रकाश प्रदान करते हैं।

१३७—वास्तव में विद्वान वह है जो अपनी इच्छा को त्याग कर परमात्मा की इच्छा से कार्य करता है।

१३८—मनुष्य जितना नम्र होगा जितना अधिक परमात्मा पर विश्वास होगा उतना ही अधिक वह अपन कार्यों में कुशल होगा उतनी ही अधिक शान्ति और हार्दिक तुष्टि को भोगेगा।

१३९—यदि तुम अध्ययन से लाभ उठाना चाहते हो तो नम्रता, सादगी और निष्ठा के साथ पढ़ो। अपनी विद्वता को आदर की इच्छा न रखकर लगन के साथ पूछो और सन्तों के वचनों को सुनो, बड़ों के सद् वचनों को उपेक्षा की दृष्टि से न देखो क्योंकि बिना कारण उनकी कीमत नहीं होती अर्थात समय पर उनका महत्व प्रगट होता है।

१४०—अपने शरीर के आकार अथवा अपने रूप की सुन्दरता की प्रशंसा मत करो, क्योंकि थोड़ी सी बीमारी में वह कुरूप और नष्ट हो जावेगा।

१४१—यदि तुम में अच्छाई हो तो यह समझो कि दूसरों में तुमसे कहीं अधिक है।

१४२—विनम्र पुरुष चिरंतन शान्ति को प्राप्त करते हैं। अभिमानी पुरुषों के हृदय में ईर्ष्या और क्रोध की भट्टी जलती रहती है।

१४३—सभी के सामने अपना हृदय मत खोलो और जो बुद्धिमान परमात्मा से डरने वाला है उनसे अपने व्यवहार के सम्बन्ध में बातें कहो।

१४४—एकान्त हृदय वाले धन्य हैं क्योंकि उनको बहुत शान्ति मिलती है।

१४५—जो सबसे छोटा और सबका सेवक बनने का प्रयत्न नहीं करता वह बहुत शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता।

१४६—साधन के मार्ग में मनुष्य की ऐसी परीक्षा होती है जैसे आग की भट्टी में सोने की।

१४७—विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं, सत्य पालन के समान कोई तप नहीं, राग के समान दुःख का कोई कारण नहीं है।

१४८—जैसे रेशम का कीड़ा अपने आप परिग्रह से मर जाता है वैसे ही मनुष्य भी परिग्रह से मारा जाता है।

१४९—यदि मन निश्चल है, वचन निर्मल है, करनी भली है तो फिर साधक को क्या चाहिए।

१५०—अहम् और मम् को दबाकर सबके भीतर भगवान

के दर्शन करना सन्तों का कार्य है।

१५१—वैराग्य ईश्वर प्राप्ति का गूढ़ उपाय है उसे तो गुप्त रखने में कल्याण है जो अपने वैराग्य को प्रगट करता है उनका वैराग्य उनसे दूर भागता है।

१५२—ईश्वर से डरना भाग्यशाली बनने की निशानी है।

॥ प्रार्थना ॥

ो बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय।
भिलाषा हम सब की, भगवन् पूरी होय ॥

विद्या, बुद्धि, तेज, बल, सबके भीतर होय।
दूध, पूत, धन-धान्य से, बंचित रहे न कोय ॥

की भक्ति प्रेम से, मन होवे भरपूर।
द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर ॥

मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश ॥

प से हमें बचाइये, करके दया दयाल।
ना भक्त बनाय कर, सबको करो निहाल ॥

दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अरु प्यार।
हृदय में धैर्य्य वीरता, सबको दो करतार ॥

रायण तुम आप हो, पाप के मोचन हार।
मा करो अपराध सब, करदो भव से पार ॥

हाथ जोड़ बिनती करूँ, सुनिये कृपा निधान।
साधु-संगत सुख दीजिये, दया नम्रता दान ॥

मुद्रकः—पं० बन्नूलाल भार्गव,
भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स, चन्दौसी।